काश्मीर शैवदर्शन का परिशीलन

प्रदीप

शैवदर्शन को आध्यात्मिक दर्शन के नाम से भी जाना गया है। भगवान शिव की आराधना के बिना इसके रहस्यपरक विषयों को आत्मसात् नहीं किया जा सकता है। अतः गुरु के द्वारा शिष्य पर शक्तिपात् का होना अनिवार्य है। शिव की विशिष्ट कृपा से ही इस त्रिक दर्शन के स्वाध्याय का अवसर मिलता है। गुरु के प्रसाद से शिष्य इस अध्यात्मिक ज्ञान परम्परा का साक्षात्कार कर लेता है। शास्त्रों में भी कहा गया है–

गुरु प्रसादतः सर्व लभ्यते शुभमात्मनः।
तस्मात् सेव्यो गुरुर्नित्यमन्यथा न
शुभं भवेत्।।

अर्थात् गुरु के प्रसाद से शिष्य को सभी कुछ मिल जाता है। जब शिष्य के द्वारा गुरु को नित्य सेवित किया जाता है तो शिष्य के जीवन में कुछ भी अशुभ नहीं होता है।

तन्त्रलोक में स्पष्ट कहा गया है–शिव और गुरु दोनों ही समान है। इनमें कोई भी भेद नही है–

"यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स
गुरुः स्मृतः।
उभयोरन्तरं नास्ति गुरोरपि शिवस्य च"।।

अर्थात् जो गुरु है, वही शिव कहे गये हैं। जो शिव हैं वह गुरु है। गुरु और शिव में कोई अन्तर नहीं है।' गुरु की भक्ति से ही शिवरूपी महाबिन्दु की प्राप्ति होती है। काश्मीर शैवदर्शन की ग्रन्थों में गुरु महिमा का विवेचन पदे-पदे मिलता है। शिवसंहिता में भी स्पष्ट कहा गया है–

"गुरूपदिष्टमार्गेण प्रत्यहं यः समाचरेत।
बिन्दुर्सिद्धिः भवेत्तस्य
महासिद्धिप्रदायिका।।"'

काश्मीर शैवदर्शन का परिशीलन

काश्मीर शैवदर्शन का परिशीलन

प्रदीप

राधा पब्लिकेशन्स
नई दिल्ली-110002

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : 2015

ISBN 978-81-7487-981-3

ISBN 81-7487-981-1

9 788174 879813

राधा पब्लिकेशन्स

4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज,

नई दिल्ली–110002

फोन : 23247003, 23254306

नितिन गर्ग द्वारा राधा पब्लिकेशन्स के लिए प्रकाशित तथा
एशियन ऑफसेट प्रिंटर्स, मौजपुर दिल्ली -110053 में मुद्रित।

Kashmir Shaivdarshan ka Parishilan ***by*** **Pradeep**

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति ज्ञानमूलक है। इस ज्ञानपरम्परा का पल्लवन भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के विविध सम-विषम काल खण्ड़ों में अबाध गति से हो रहा है। यह विविध ज्ञानविधाओं का समागम है। काश्मीर शैवदर्शन इसका अभिन्न अंग है। इस दर्शन ने उपासना एवं अध्यात्म के नवीन मार्गों का उद्घाटन किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ काश्मीर शैवदर्शन का परिशीलन युवा एवं उत्साही विद्वान् द्वारा किया गया श्रमसाध्य एवं सराहनीय प्रयास है। यह ग्रन्थ काश्मीर शैवदर्शन की संक्षिप्त जानकारी प्रदान करने में सहायक है। शिव कृपा का शक्तिपात् सदैव लेखक पर बना रहे। यह ईश्वर से प्रार्थना है।

डॉ. रजनीश कुमार मिश्र

एसोसियेट प्रोफेसर, विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली- भारत

प्राक्कथन

ऊँ रुद्राय नमः का उद्घोष करते हुए मुझे आनन्द की अनुभूति हो रही है—उस रुद्रदेव महादेव के शक्तिपात् से मैं मायाकञ्चुकावकृत शरीर द्वारा इस कार्य में सफल हो पाया। बाल्यावस्था से बार-बार सुनता आ रहा हूँ—भारतीय ज्ञानपरम्परा में वेदों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वेदों को ज्ञान का भण्ड़ार माना जाता है। इन **प्रेरणाप्रदायक वाक्यों से गुरुकुल शिक्षा पद्धति** से मुझे वेदों पर शोधकार्य करने की प्रेरणा मिली। वेदों के रहस्य को जानने के सन्दर्भ में विद्वान् भी मौन ग्रहण कर लेते हैं। अतः इनके सरलतम स्वरूप का अध्ययन करने हेतु सर्वप्रथम मैंने **शास्त्री कक्षा में पुराणेतिहास विषय** का अध्ययन किया। क्योंकि **महर्षि नारद ने छान्दग्योपनिषद्** (7/1/2) में **इतिहास और पुराण** को संयुक्त रुप से **"पञ्चम वेद"** कहा है—**"इतिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्"**। तत्पश्चात् **जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में परास्नातक कक्षा** के दौरान शैवदर्शन की कक्षाओं ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया। अतः शैवदर्शन के अध्ययन के प्रति मैं और अत्यधिक आकृष्ट होता चला गया। अपने गुरुजनों की विनम्रता और सादगी में मैंने शिवरूप का साक्षात्कार किया। शिव को भोलेनाथ क्यों कहा जाता है? मैं नहीं जानता । लेकिन शिवभक्त में कितना भोलापन होता है, यह मैं अच्छी तरह जान गया। **स्नातकनिष्णात की कक्षा में मुझे बी.ए की कक्षाओं (School of Language JNU)** को पढ़ाने का मौका मिला। यह अवसर मेरे लिये गौरव की बात थी। उन सभी कक्षाओं में मैंने शैवदर्शन की सामान्य विषयवस्तु को समझने का प्रयास किया। अतः मैने शैवदर्शन पर एक लघु पुस्तक लिखने का कार्य प्रारम्भ किया। इसके लेखन हेतु मैंने सर्वप्रथम इसमें प्रस्तुत की जाने वाली सामग्री का चयन किया। इसकी प्रेरणा मुझे **काश्मीर शैवसाधिका ममतामयी शिवप्रतिमूर्ति माँ प्रभादेवी जी** से प्राप्त हुई। **सितम्बर 2013 में ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, निसात नगर, श्रीनगर** द्वारा में काश्मीर शैवदर्शन पर **आयोजित अन्तर्राष्ट्रिय सेमिनार** में मुझे गुरुकृपा के शक्तिपात् से माँ प्रभादेवी जी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। इस

पुस्तक के अध्यायों के चयन हेतु मुझे **प्रो. करतार शर्मा जी (संस्कृत विभाग, जम्मू कश्मीर विश्वविद्यालय)** का सानिध्य प्राप्त हुआ। लगभग एक वर्ष छः महीने के अथक वामन प्रयास से इस पुस्तक का इति सफल हो पाया।

शीर्षक आधारित सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त करने हेतु मुझे अपने प्रातः पूजनीय **गुरुजन डॉ. रजनीश कुमार मिश्र जी** का सानिध्य प्राप्त हुआ। उन्होंने सदा मुझे सामान्य जानकारी (Basic Concept) को समझने पर बल दिया। उन्होंने मुझे बताया कि—काश्मीर शैवदर्शन आध्यात्मिक एवं साधनापरक दर्शन है। साधना के बिना इसको आत्मसात् करना दुष्कर कार्य है। अतः भक्तिमार्ग ही इसके लिये प्रथम पायदान है। भक्ति को सिद्ध करने के लिये इच्छाशक्ति का होना अति आवश्यक है। परम शिव की शक्तियों में चित् शक्ति, आनन्द शक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति मुख्य है। इनमें आनन्द शक्ति भक्ति का मूल केन्द्र है। भक्ति परमात्मा की आह्लादिनी शक्ति है। अतः भक्ति साधना से सभी विषयों को सरलता से आत्मसात् किया जा सकता है। इन ज्ञान मणिकों से मुझे महती प्रेरणा मिली। अतः मैं अपने गुरु जी का बार-बार धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

काश्मीर शैवदर्शन के सभी विषयों एवं सिद्धान्तों को समझने के लिये अन्य दार्शनिक विद्याओं का स्वाध्याय भी अति आवश्यक है। यद्यपि काश्मीर शैवदर्शन साधनापरक एवं आध्यात्मिक सोद्देश्य का पोषक है। परन्तु इस ज्ञानपरम्परा का वर्तमान समय में उच्छेद सा हो गया है। संस्कृत शोध केन्द्र, कॉलेज या विश्वविद्यालयों में शैवदर्शन की शाखाओं पर शोधकार्य नाममात्र ही मिलते हैं। इस दर्शन पर शोधकार्य करना अपेक्षित है। इसका प्राचीन साहित्य अत्यन्त विशाल है। शैवदर्शन का आधार आगम वा तन्त्रशास्त्र हैं। **इसमें योग, धर्म, साधना, अध्यात्म, सृष्टिप्रक्रिया, कुण्डलिनी जागरण, शिवशक्ति अभेदात्मकता, सप्तविध प्रमाता, प्रकाश-विमर्श, जीवनमुक्ति, स्पन्दसिद्धान्त, शिव शक्तिपात** इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषयों का वर्णन किया गया है। इसकी आचार्य परम्परा में सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्त का नाम सर्वोपरि हैं। इनके विशिष्ट योगदान से यह ज्ञानपरम्परा समयानुसार अपने अस्तित्त्व को सर्वत्र व्याप्त करने में सफल हो गई।

अन्त में वामन प्रयास द्वारा प्रस्तुत पुस्तक में विचार विमर्श करने तथा सहयोग प्रदान करने के लिये मैं **अपने अग्रज श्री प्रवीण कुमार द्विवेदी** जी का धन्यवाद देता हूँ, उनकी प्रेरणा से ही मैं सदा अपने शोधकार्य में निरन्तर संलग्न रहा। उन्होंने वीर शैवदर्शन पर अपना एम.फिल. शोधप्रबन्ध लिखा है। वर्तमान में

वे संस्कृत विभाग जे.एन.यू. से ही पी-एच.डी के शोधकार्य में अध्ययनरत् हैं।

इसके बाद मैं **अपने भ्राता श्री हरीश कुमार जी** (प्रत्यभिज्ञादर्शन पर दिल्ली विश्वविद्यालय के शोधकार्य में अध्ययनरत्) का धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मेरा यथासमय सहयोग किया तथा प्रत्यभिज्ञादर्शन के तथ्यों को समझाने का प्रयास किया।

काश्मीर शैवदर्शन का केन्द्र काश्मीर प्रदेश था। इस परम्परा के अन्तिम शैवसाधक एवं सिद्धहस्त तपोमूर्ति स्वामी लक्ष्मण जू जी महाराज थे। उनके पश्चात् ममतामयी शिवभक्त वत्सला माँ प्रभादेवी जी इस ज्ञान परम्परा के ज्ञानप्रवाह को निरन्तर अबाध गति प्रदान कर रही है। अतः उनके आशीर्वाद का यह प्रसाद आपके करकमलों में उपस्थित है। पुस्तक में हुई त्रुटियों के लिए मुझे क्षमा करें। क्योंकि त्रुटियाँ मेरी है, बाकी सभी अच्छाईयों को परम शिव की कृपा समझे एवं उन्हें ग्रहण करें।

अन्त में मैं श्री नितिन गर्ग (राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली) को शतसः धन्यवाद देता हूँ; जिनके सद्प्रयत्नों से इस कृति को यह स्वरूप प्राप्त हो सका।

लेखक
प्रदीप

विषय-सूची

आशीर्वचन v

प्राक्कथन vii

संकेताक्षर सूची xv

भूमिका 1

प्रथम अध्याय : शैवदर्शन का उद्भव एवं विकास **10**

1. **शैवदर्शन का उद्भव :** (क) निगम शब्द का अर्थ (ख) आगम शब्द का अर्थ (ग) शैवदर्शन का वैदिक आधार (घ) शैवदर्शन का ऐतिहासिक आधार (ड) शैवदर्शन का प्रारम्भ।
2. **शैवदर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय :** (क) नकुलीशपाशुपत (ख) दक्षिणशैवसिद्धान्त शैवदर्शन (ग) वीर शैवदर्शन (घ) काश्मीर शैवदर्शन।
3. **काश्मीर शैवदर्शन का नामकरण :** (क) काश्मीर शैवदर्शन (ख) आगमदर्शन (ग) स्पन्ददर्शन (घ) प्रत्यभिज्ञादर्शन (ड) त्रिकदर्शन (च) षडर्धदर्शन।

द्वितीय अध्याय : आचार्य परम्परा एवं साहित्य **35**

1. **आचार्य परम्परा का परिचय :** *(क) प्रमुख शैवाचार्य :* 1. सन्त दुर्वासा 2. मठिकागुरु 3. संगमादित्य 4. वसुगुप्त 5. सोमानन्द 6. उत्पलदेव 7. अभिनवगुप्त 8. भट्टकल्लट 9. क्षेमराज 10. जयरथ 11. रामकण्ठ 12. भास्करकण्ठ 13. भट्टनारायण 14. योगराज 15. वरदराज एवं मधुराज 16. उत्पलवैष्णव 17. भट्ट प्रद्युमन 18. नागार्जुन 19. आचार्य अमृत वाग्मय।

(ख) अन्य काश्मीर शैवाचार्य : श्रीकण्ठसूरी, नारायण कण्ठ, भट्टभास्कर, शिवोपाध्याय, आदिनाथ, शिवानन्द नाथ, पुण्यानन्द नाथ, स्वतन्त्रनन्द नाथ, चक्रपाणि नाथ, साहिब कौल, राजानक आनन्द, रामेश्वर झा

2. **काश्मीर दर्शन के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय :** 1. शिवसूत्रम् 2. मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम् 3. रुद्रयामलतन्त्रम् 4. स्वच्छन्दतन्त्रम् 5. नेत्रतन्त्रम् 6. परात्रिंशिका 7. विज्ञानभैरव 8. स्पन्दकारिका 9. शिवदृष्टि 10.तन्त्रसार 12. तन्त्रलोक 13. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् 14. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी 15.परमार्थसार इत्यादि।

तृतीय अध्याय : काश्मीर शैवदर्शन की दार्शनिक मीमांसा **63**

1. **तत्त्वमीमांसा का स्वरूप–** *(क) शुद्ध सृष्टि* - 1. शिवतत्त्व 2. शक्तितत्त्व 3. सदाशिवतत्त्व 4. ईश्वरतत्त्व 5. शुद्धविद्यातत्त्व /
   (ख) अशुद्ध सृष्टि– 6. मायातत्त्व (पञ्चकञ्चुक) 7. काल 8. कला 9. नियति 10. विद्यातत्त्व 11. राग 12. पुरुष /
   (ग) अशुद्धसृष्टि– 13. प्रकृति 14. महत् 15. अहंकार 16. मन 17. चक्षु 18. श्रोत्र 19. घ्राण 20. रसन 21. स्पर्शन 22. वाक् 23. पाणि 24. पायु 25. पाद 26. उपस्थ 27. शब्द 28. रूप 29. रस 30. गन्ध 31. स्पर्श 32. आकाश 33. वायु 34. अग्नि 35. जल 36. पृथ्वी।
2. **ज्ञानमीमांसा का स्वरूप–** (क) भारतीय दर्शन में ज्ञान का स्वरूप : एक सामान्य परिचय (ख) काश्मीर शैवदर्शन में ज्ञानपक्ष (ग) प्रमाण विचार (घ) प्रामाण्य विचार (ड) भ्रमविचार (च) सप्तविध प्रमाता एवं त्रिविध मल।
3. **आचारमीमांसा का स्वरूप–** 1. संसार 2. त्रिविध दुःख 3. माया 4. अज्ञान 5. ज्ञान 6. बन्धन 7. मुक्ति 8. शक्तिपाय 9. अनुपाय 10. उच्चारण योग 11. करण योग 12. ध्वनियोग 13. स्थानकल्पना 14. षडध्व-धारणा 15. नया मार्ग 16. दीक्षा, बाह्य 17. पुजा 18. साधना 19. शिवभक्ति 20. योग आदि।

चतुर्थ अध्याय : शैवदर्शन के प्रमुख सिद्धान्त **94**

(1) आभासवाद (2) स्पन्दवाद (3) शिवाद्वयवाद (4) प्रकाशविमर्शमय का सिद्धान्त (5) स्वातन्त्र्य का सिद्धान्त (7) परिपूर्णता का सिद्धान्त (8) प्रत्यभिज्ञा का सिद्धान्त।

पाँचवाँ अध्याय : काश्मीर शैवदर्शन के पारिभाषिक शब्दों का संग्रह 109

1. प्रकाश 2. विमर्श 3. स्पन्द 4. चित्ति 5. स्वातन्त्र्य 6. आगम 7. निगम 8. प्रत्यभिज्ञा 9. उपाय 10. मल 11. कञ्चुक 12. पराशक्ति 13. शक्तिपात 14. ईश्वरतत्त्व 15. पञ्चकृत्य 16. त्रिाक शब्द 17. प्रमाता 18. शिव 19. शक्ति 20.सदाशिव 21. अनुग्रह 22. अनुत्तरतत्त्व 23. उन्मेष 24. निमेष 25. उन्मीलन समाधि 26. चित् , चित्त, चेतन्य, चेत्य 27. जीवमुक्ति 28. परमशिव 29. प्रकृति 30. परावाक् ।

उपसंहार 135

संदर्भ ग्रन्थ सूची 141

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

संकेताक्षर सूची

अ. को.	-	अमर कोश
ऋ. सं.	-	ऋग्वेद संहिता
य. सं.	-	यजुर्वेद संहिता
अ. सं.	-	अथर्ववेद संहिता
श्वेता. उ.	-	श्वेताश्वतरोपनिषद्
ई. प्र. का.	-	ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका
ई. प्र. वि.	-	ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी
त. लो.	-	तन्त्रालोक
त. को. वि.	-	तन्त्रालोकविवेक
त. सा.	-	तन्त्रसार
प. सा.	-	परमार्थसार
स्प. का.	-	स्पन्दकारिका
स्प. नि.	-	स्पन्दनिर्णय
शि. दृ.	-	शिवदृष्टि
शि. सू.	-	शिवसूत्रम्
प्र. हृ.	-	प्रत्यभिज्ञाहिदयम्
रु. या. त.	-	रुद्रयामलतन्त्रम्
का. शै. स्प.	-	काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्द शास्त्र
का. शै. द. बृ. को.	-	काश्मीर शैवदर्शन बृहत्कोष
का. शै.	-	काश्मीर शैवदर्शन
वि. भै.	-	विज्ञानभैरवम्
त्रि. द.	-	त्रिकदर्शनम्
वै. सा. सं.	-	वैदिक साहित्य एवं संस्कृति
वि. भै. वि.	-	विज्ञानभैरवविवृत्ति

उ. सि. त्र.	-	उत्पलदेव की सिद्धित्रयी
स. द. सं.	-	सर्वदर्शनसंग्रह
भा. द. परि. को.	-	भारतीय दर्शन परिभाषा कोश
बो. प. द.	-	बोध पञ्च दशिका
श्री. परा. त्रि.	-	श्रीपरात्रिशिका
स्व. त.	-	स्वछन्दतन्त्रम्
श. क. द्रु.	-	शब्दकल्पद्रुम
मा. वि. वा.	-	मालिनीविजयवार्तिकम्
ने. त.	-	नेत्रतन्त्रम्

।। इति शिवम् ।।

भूमिका

पृष्ठभूमि : भारतीय ज्ञानपरम्परा मानव इतिहास की अमूल्य निधि है। मानव को प्रेरणा प्रदान करने में इसका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है। यह परम्परा प्राच्य से लेकर आज तक अपने ज्ञानमणिकों से सुशोभित होती रही है। आगम-निगम ज्ञानपरम्परा को इसका मूल आधार माना जाता है। यह ज्ञानपरम्परा भारतीय वेदों और आगमों से सुसज्जित है। वेदों को भारतीय संस्कृति में प्राण के रूप में स्वीकार किया गया है। भारतीय संस्कृति समस्त संसार की प्रेरणा प्रदान करने वाली संस्कृति है। क्योंकि यह मानव को **त्रिविध दुःखों से निवृति कराने वाले मार्ग** का साक्षात्कार करवाती है। भारतीय दर्शन का चरम लक्ष्य तापत्रय से मुक्ति दिलाना है। इसमें मोक्ष प्राप्ति हेतु विभिन्न साधानों द्वारा विचार विमर्श किया गया है। अतः सर्वप्रथम दर्शन के सामान्य स्वरूप को समझना अनिवार्य है।

भारतीय दर्शन की तीन प्रमुख धाराएं है—वैदिक, अवैदिक, आगमिक दर्शन। वैदिक दर्शन आस्तिक सम्प्रदाय से सम्बन्धित है तो अवैदिक दर्शन नास्तिक और आगमिक दर्शन की एक कड़ी में शैवदर्शन का उद्भव और विकास हुआ, जो वैदिक दर्शन को अपने अन्दर आत्मसात किये हुए है। शैवागमों को शिव का प्रकाशन कहा गया है। इस दर्शन में सभी सिद्धान्त आगमों पर आधारित हैं। अतः यह शुद्ध आगमिक दर्शन होते हुये भी वैदिक धर्म का पोषक है। काश्मीर शैवदर्शन भारतीय दर्शन में सर्वाधिक प्राचीन दर्शन के रुप में प्रसिद्ध है। **परम शिव को प्राप्त करना एवं स्वयं की प्रत्यभिज्ञा कराना ही इस दर्शन का लक्ष्य है।**

माधवाचार्य ने **"सर्वदर्शनसंग्रह"** ग्रन्थ में सभी भारतीय दर्शनों का सार निकालकर प्रस्तुत किया है। माधवाचार्य ने इसे **प्रत्यभिज्ञादर्शन** के नाम से अभिहित किया है। प्रत्यभिज्ञा का सामान्य अर्थ होता है—स्वयं की पहचान। संसार में आकर जीव माया से आवृत होकर स्वयं के अस्तित्व को भूल जाता है। अतः शिव के द्वारा स्वयं की पहचान करना ही प्रत्यभिज्ञा है।

"ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी" में भी कहा गया है—"**प्रतीपमात्माभिमुख्येन ज्ञानं प्रकाशः प्रत्यभिज्ञा**"।[1] स्वयं की प्रत्यभिज्ञा करने के पश्चात् जीव मोक्ष के लिये अग्रसित होता है। सम्पूर्ण भारतीय दर्शन की विषयवस्तु के अध्ययन से भी यही स्पष्ट होता है कि उसका चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करना है।

वैदिक दर्शन के प्रारम्भ से लेकर आधुनिक दर्शन में मोक्ष के विषय में सर्वत्र वर्णन किया गया है। तथापि प्रत्येक दर्शन अपनी विशिष्टता के कारण प्रसिद्ध है। इसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

1. सांख्यदर्शन :- सांख्य दर्शन महर्षि कपिल द्वारा प्रणीत है। इसको द्वैतवादी दर्शन भी कहा जाता है। क्योंकि इसके अनुसार तत्त्व दो प्रकार का होता है—प्रकृति और पुरुष। सृष्टि प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिये सांख्य दर्शन में पच्चीस तत्त्वों का वर्णन किया गया है। इसमें वर्णित विषय इस प्रकार हैं।

- सत्कार्यवाद का विवेचन ।
- प्रकृति एवं पुरुष का विवेचन ।
- प्रमाण विचार करना।
- पच्चीस तत्त्वों का वर्णन करना ।
- मोक्ष एवं कैवल्य का वर्णन करना।

2. योग दर्शन :- महर्षि पतञ्जलि योगदर्शन के प्रवर्तक हैं। योग और सांख्य दर्शन में अनेक समानताएँ हैं । इसका प्रमुख विषय योग का अभ्यास करना है। योगाभ्यास के आठ अंग योगांग कहलाते हैं। इसमें वर्णित विषय इस प्रकार हैं।

- समाधि का विवेचन करना।
- चित्त की भूमियों का वर्णन करना।
- ईश्वर के स्वरूप को स्पष्ट करना ।
- अष्टांग योग का वर्णन करना।
- कैवल्य का वर्णन करना।

3. न्यायदर्शन :- न्याय दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम हैं। न्याय वस्तुवादी दर्शन है। प्रमाणों के आधार पर यह अपनी बात को सिद्ध करता है। इसमें वर्णित विषय इस प्रकार है।

- प्रमाण मीमांसा का विवेचन करना।
- हेत्वाभास का विवेचन करना।
- कार्यकारण सिद्धान्त का वर्णन करना।

- ईश्वर सिद्धि को स्पष्ट करना।
- मोक्ष का विवेचन करना।

4. वैशेषिक दर्शन :- वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद हैं। उनका दूसरा नाम उलूक था। अतः इस दर्शन को औलूक्य दर्शन भी कहा जाता है। यह संसार की सभी वस्तुओं को सप्त पदार्थों के द्वारा सिद्ध करता है। इसमें वर्णित विषय इस प्रकार हैं।

- सप्तपदार्थों का विवेचन करना।
- सृष्टि और प्रलय के सिद्धान्त का विवेचन करना ।
- परमाणुवाद को स्पष्ट करना।
- अभाव का विवेचन करना।

5. पूर्वमीमांसादर्शन :- मीमांसा दर्शन के प्रवर्तक महर्षि जैमिनि हैं। इसमें वैदिक कर्मकाण्ड़ का युक्तिबद्ध विवेचन किया गया है। कर्मकाण्ड़ का मूल आधार वेद है। वेद का विधान ही धर्म है। इस दर्शन में अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर गम्भीर विवेचन किया गया है। इसमें वर्णित विषय इस प्रकार हैं।

- कर्मकाण्ड़ का वर्णन करना।
- प्रमाण विचार करना।
- तत्त्व विचार करना।
- धर्म पर विचार करना

6. वेदान्त दर्शन :- इसके प्रवर्तक महर्षि बादरायण माने जाते हैं। इसमें उपनिषदों के गहनतम विषयों पर विचार किया गया है। उपनिषद् साहित्य के महत्वपूर्ण एवं गम्भीर विषयों का इसमें सर्वत्र वर्णन मिलता है। जैसे :—

- अहं ब्रह्मास्मि के सिद्धान्त को स्पष्ट करना।
- जगत् विचार करना।
- ब्रह्म का विशद विवेचन करना।
- जीव और ब्रह्म का स्पष्टीकरण करना।
- आत्मा पर विचार करना।
- मोक्ष पर विचार करना।

7. बौद्धदर्शन :- गौतम बुद्ध इसके प्रवर्तक हैं। उन्होंने संसार को गहनतम अवस्था के साथ समझकर उसका विवेचन किया है। जिनको आर्य सत्य का नाम दिया गया है। इसमें वर्णित विषय इस प्रकार हैं।

- चत्वार आर्य सत्य।
- क्षणिकवाद एवं अनात्मवाद सिद्धान्तों का वर्णन करना।
- पञ्च स्कन्धों का वर्णन करना।
- हीनयान और महायान का वर्णन करना।

8. जैनदर्शन :- आचार्य ऋषभदेव को जैन दर्शन का प्रवर्तक माना जाता है। यह वस्तुवादी दर्शन है। इसके विषय इस प्रकार है।

- अनेकान्तवाद के सिद्धान्त को स्पष्ट करना।
- आकाश एवं जीव आदि विषयों का वर्णन करना
- सप्तभंगीनय को स्पष्ट करना।
- धर्म और अधर्म पर विचार करना।
- मोक्ष की समीक्षा करना।

9. चार्वाक दर्शन :- आचार्य बृहस्पति को इस दर्शन का प्रतिपादक माना गया है। इसमें भौतिकवाद का विशद विवेचन किया गया है। इसका प्रमुख उद्देश्य भौतिकवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना है।

भारतीय दर्शन की विशेषेताएँ :- भारतीय दर्शन की अनेक विशेषाताएँ है। उनका बिन्दुसहित विस्तारपूर्वक वर्णन करना कठिन है। तथापि प्रमुख विशेष का वर्णन इस प्रकार है।

1. भारतीय दर्शन पुरुषार्थ चतुष्टय का वर्णन करता है।
2. आध्यात्मिक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर करता है।
3. कर्मवाद एवं पुनर्जन्म में विश्वास करता है।
4. अज्ञान के निवारण हेतु उपायों का वर्णन करता है।
5. त्रिविध दुःखों से निवृति के उपायों का विवेचन करता है।
6. मोक्ष प्राप्ति हेतु योगादि साधनों का विवेचन करता है।
7. धर्म और दर्शन में समन्वय स्थापित करता है।
8. श्रुत ज्ञानपरम्परा का पोषक एवं रक्षक है ।
9. संसार की सत्ता में विश्वास रखता है।
10. भारतीय दर्शन प्रगतिशील माना जाता है।

काश्मीर शैवदर्शन का उदय :- भारतीय दर्शन में शैवदर्शन को आध्यात्मिक दर्शन के रूप में माना जाता है। इसके अध्ययन के लिये अध्यात्म से संयोग करना पड़ता है। इसमें परमशिव को ही जगत् का मूल कारण माना गया है। इसकी

ज्ञानपरम्परा का मूल आधार आगम ग्रन्थ है। आगम ग्रन्थों के सृष्टा एवं वक्ता स्वयं भगवान् शिव ही माने जाते हैं।[2] **इनमें शिव एवं पार्वती के संवादों का संग्रह** किया गया है। शैवाचार्यों के अनुसार आगम ग्रन्थ शिव का प्रकाशन हैं। इसको सहर्ष स्वीकार भी किया जा सकता है, क्योंकि **काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार वाणी अपने परा स्तर पर शिव के साथ अविभाज्य अवस्था में रहती है, जो अपने विकास के स्तर पर ब्राह्य प्रकट होती है।**[3] इसके अतिरिक्त यदि शैवागम शिवज्ञान प्राप्त मुक्त पुरुष की रचना है तो भी उन्हें शिव की ही रचना माना जाएगा, क्योंकि शिवज्ञानप्राप्त व्यक्ति शिवरूप ही कहा जाता है। शैवदर्शन के उद्भव पर प्रकाश ड़ालते हुए आचार्य सोमानन्द **"शिवदृष्टि"** ग्रन्थ के **सातवें आह्निक्** में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है।

अति प्राचीनकाल में शैवदर्शन ऋषि माहात्माओं के पास था। कलयुग के प्रभाव से वे ऋषि कलापि ग्राम आदि मानव दृष्टि से किन्ही अदृश्य स्थानों पर चले गये तथा शैवविद्या का उच्छेद सा हो गया था। तत्पश्चात् **एक बार भगवान् कण्ठ विचरण करते हुए हिमालय पर्वत** पर आये और उन्होंने **दुवार्सा मुनि** से शैवदर्शन का प्रचार प्रसार करने का उपदेश दिया। तत्पश्चात् मुनि दुर्वासा ने शैवदर्शन की ज्ञानपरम्परा को आगे बढ़ाने के लिये **अपने शिष्य (मानस पुत्र) त्र्यम्बकादित्य को उत्पन्न** किया और शैवागम सम्मत अद्वैत शैवदर्शन की शिक्षा दी। त्र्यम्बकादित्य ने इसका अध्ययन अध्यापन पुनः प्रारम्भ किया।[4] आगे चलकर यह शास्त्र त्र्यम्बक के नाम पर **"त्र्यम्बकशास्त्र"** के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[5] इस प्रकार **प्रथम त्र्यम्बकादित्य अपने शिष्य त्र्यम्बकादित्य द्वितीय** को शैवदर्शन की विद्या का प्रचार प्रसार करने हेतु नियुक्त किया और सिद्धलोक चले गये। इसी तरह सिद्धों की **चौदहवीं पीढ़ी** बीत गयी और **पन्द्रहवीं पीढ़ी** में फिर से **त्र्यम्बकादित्य** एक बार तीर्थ पर गये। वहाँ उन्होंने एक ब्राह्मण कन्या के साथ विवाह किया। **त्र्यम्बकादित्य के पुत्र संगमादित्य** का जन्म हुआ।

संगमादित्य भी भ्रमण करते हुए काश्मीर आ गये तथा यहीं पर निवास करने लगे। इस प्रकार **त्र्यम्बकमठिका कैलाश** से आकर काश्मीर में बस गयी। इसी क्रम में संगमादित्य के बाद **वर्षादित्य, अरुणादित्य एवं आनन्द की तीन** पीढ़ियाँ बीत गयी और **बींसवी पीढ़ी में सोमानन्द का जन्म हुआ**। पीढ़ीयों को क्रमशः देखने पर स्पष्ट है कि–**प्रथम त्र्यम्बकादित्य के बाद चौदह पीढ़ियों का क्रम चला** तथा **पहन्द्रवीं पीढ़ी में पुनः त्र्यम्बकादित्य** आये। इसके पश्चात् **सोलहवीं पीढ़ी में संगमादित्य, सत्रहवीं पीढ़ी में वर्षादित्य, अठारहवीं में**

अरुणादित्य तथा उन्नीसवीं पीढ़ी में आनन्द का जन्म हुआ। बीसवीं पीढ़ी में आचार्य सोमानन्द का जन्म हुआ। "शिवदृष्टि" में स्वयं सोमानन्द ने इसका उल्लेख किया है।[6]

इसी प्रकार से **"तन्त्रलोक"** में भी स्पष्ट वर्णन मिलता है–श्रीभगवान कण्ठनाथ की आज्ञा से **त्र्यम्बक,** आमर्दक और श्रीनाथ नाम वाले सिद्ध अवतरित हुये। वे क्रमशः अद्वय, द्वय और द्वयाद्वय शैवशास्त्र में निपुण थे। प्रथम त्र्यम्बक की परम्परा चली। दूसरे आमर्दक की पुत्री का वंश चला। इसकी सन्तान अर्धत्र्यम्बक नाम से सुप्रतिष्ठित हुई। इस प्रकार से साढ़े तीन मठिकायें प्रवर्तित हुई।[7]

यह क्रम संगमादित्य से होते हुए सोमानन्द तक अग्रसित होता चला गया। शनैः शनैः यह ज्ञानपरम्परा सर्वत्र प्रसारित हो गई। आचार्य सोमानन्द को **"प्रत्यभिज्ञादर्शन"** का प्रणेता माना जाता है। इसी प्रकार से शैवदर्शन का उद्भव एवं विकास हुआ। इसके पश्चात् उत्पलदेव एवं अभिनवगुप्त का नाम भी इसमें सर्वोपरि माना जाता है।

इस प्रकार से सभी प्रकार के मन्थन के बाद इस पुस्तक शीर्षक निर्धारित किया गया। अतः प्रस्तुत पुस्तक का शीर्षक इसके सामान्य परिचय को दर्शाता है।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रारम्भ करते हुए सर्वप्रथम भूमिका के रूप में काश्मीर शैवदर्शन की पृष्ठभूमि में भारतीय दर्शन की त्रिविध प्रमुख धारा वैदिक, अवैदिक एवं आगमिक दर्शन के संदर्भ में कहा गया है। भारतीय दर्शन की प्रमुख शाखाओं का परिचय देते हुए सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, वेदान्त एवं बौद्ध , जैन, चार्वाक दर्शन के प्रमुख बिन्दुओं का संकेतरूप में उल्लेख किया गया है। इसी क्रम में भारतीय दर्शन की विशेषताओं का वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक को अधिक परिपुष्ट बनाने के लिये काश्मीर शैवदर्शन के उदय के संदर्भ में सामान्य जानकारी प्रदान की गई हैं एवं इसको पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। इसके **प्रथम अध्याय** का नामकरण **"शैवदर्शन का उद्भव एवं विकास"** निश्चित किया गया है। जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है कि इसमें शैवदर्शन के उद्भव और विकास पर प्रकाश ड़ाला गया है। शैवदर्शन के उद्भव को स्पष्ट करने के लिये सर्वप्रथम निगम और आगम शब्दों के अर्थ स्वरूप का वर्णन किया गया है तथा इसके वैदिक आधार एवं ऐतिहासिक आधार को स्पष्ट करने का लघुप्रयास किया गया है। इस ज्ञान परम्परा के विकासगत स्वरूप को समझाने के लिये सभी प्रमुख सम्प्रदायों या इसकी शाखाओं का क्रमशः सामान्य वर्णन किया गया है। शैवदर्शन को भारतीय ज्ञान परम्परा में विविध नामों

से जाना गया है। इस विषय को भी यहाँ पर सरलता से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः काश्मीर शैवदर्शन को छः नामों से जाना गया है। जिसमें काश्मीर शैवदर्शन, आगम दर्शन, स्पन्ददर्शन, प्रत्यभिज्ञादर्शन एवं त्रिक दर्शन तथा षडर्धदर्शन का क्रमशः वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में आचार्य परम्परा एवं साहित्य पर सामान्य रूप से प्रकाश ड़ालते हुए प्रमुख आचार्यों की जानकारी प्रदान की गई है। जिसमें मुख्यतः सन्त दुर्वासा, मठिकागुरु, संगमादित्य, वसुगुप्त, सोमानन्द, उत्पलदेव, अभिनवगुप्त, भट्टकल्लट, क्षेमराज जयरथ, रामकण्ठ, भास्करकण्ठ, भट्टनारायण, योगराज,वरदराज और मधुराज तथा उत्पलवैष्णव, भट्ट प्रद्युमन, नागार्जुन एवं आचार्य अमृत वाग्मय के विषय में सामान्य जानकारी प्रदान की गई है। इसी क्रम में अन्य काश्मीर शैवाचार्य श्रीकण्ठ सूरी, नारायण कण्ठ, भट्टभास्कर, शिवोपाध्याय, आदिनाथ, शिवानन्द नाथ, पुण्यानन्द नाथ, स्वतन्त्रनन्द नाथ, चक्रपाणि नाथ, साहिब कौल, राजानक आनन्द, रामेश्वर झा इत्यादि का वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार से काश्मीर शैवदर्शन के प्रमुख ग्रन्थों का वर्णन करते हुए शिवसूत्रम्, मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम्, रुद्रयामलतन्त्रम्, स्वछन्दतन्त्रम्, नेत्रतन्त्रम्, परात्रिंशिका, विज्ञानभैरव, स्पन्दकारिका, शिवदृष्टि, तन्त्रसार, तन्त्रलोक, प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, ईश्वप्रत्यभिज्ञाविमर्शनी एवं परमार्थसार इत्यादि का वर्णित विषय वस्तु के साथ सामान्य विवेचन किया गया है।

तीसरे अध्याय में काश्मीर शैवदर्शन की दार्शनिक मीमांसा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इस अध्याय में **तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा और आचारमीमांसा तीनों** पर विचार प्रस्तुत किया गया है। तत्त्वमीमांसा के अन्तर्गत शुद्ध सृष्टि, अशुद्ध सृष्टि तथा शुद्धाशुद्ध सृष्टि का स्पष्टीकरण बिन्दुओं सहित दिया गया है। सर्वप्रथम शुद्ध सृष्टि के अन्तर्गत प्रमुख पाँच तत्त्वों में शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर एवं सद्विद्या का वर्णन किया गया है। अशुद्धि सृष्टि में प्रकृति, महत्, अहंकार तथा मन सहित पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच क्रमेन्द्रियों तथा पाँच तन्मात्राओं, पाँच महाभूतों का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार से ज्ञानमीमांसा में कश्मीर शैवदर्शन के ज्ञानपक्ष को स्पष्ट करते हुए प्रमाण विचार, प्रामाण्य विचार तथा सप्तविध प्रमाता एवं त्रिविध मलों का विस्तार से वर्णन किया गया है इसी क्रम में आचारमीमांसा के अन्तर्गत संसार, त्रिविध दुःख, माया, अज्ञान एवं बन्धन, मुक्ति आदि सहित लगभग बीस विषयों पर लघु टिप्पणिओं का वर्णन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में शैवदर्शन के प्रमुख सिद्धान्त आभासवाद, स्पन्दावाद, शिवाद्वयवाद तथा प्रकाशविर्मश का सिद्धान्त, स्वातन्त्र्यवाद, परिपूर्णता का सिद्धान्त सहित प्रत्यभिज्ञा के सिद्धान्त का सरलता से विवेचन किया गया है।

पाँचवें अध्याय में काश्मीर शैवदर्शन के पारिभाषिक शब्दों का संग्रह विवेचित है। इसमें काश्मीर शैवदर्शन के मतानुसार प्रकाश, विमर्श, स्पन्द, चित्ति, **स्वातन्त्र्य, प्रत्यभिज्ञा, उपाय, पञ्चकृत्य तथा शक्तिपात् एवं अनुत्तरतत्त्व, परमशिव, परावाक्** आदि पारिभाषिक शब्दों का सारांश रूप में वर्णन किया गया है। यह शोधार्थियों एवं पाठकों के लिये अत्यन्त लाभप्रद है। यह संग्रह संस्कृत शोधार्थियों हेतु शैवदर्शन की गहनतम गुत्थियों को सुलझाने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा।

शैवदर्शन को आध्यात्मिक दर्शन के नाम से भी जाना गया है। भगवान शिव की आराधना के बिना इसके रहस्यपरक विषयों को आत्मसात् नहीं किया जा सकता है। अतः गुरु के द्वारा शिष्य पर शक्तिपात् का होना अनिवार्य है। शिव की विशिष्ट कृपा से ही इस त्रिक दर्शन के स्वाध्याय का अवसर मिलता है। गुरु के प्रसाद से शिष्य इस अध्यात्मिक ज्ञान परम्परा का साक्षात्कार कर लेता है। शास्त्रों में भी कहा गया है–

गुरु प्रसादतः सर्व लभ्यते शुभमात्मनः।
तस्मात् सेव्यो गुरुर्नित्यमन्यथा न शुभं भवेत्।।

अर्थात् गुरु के प्रसाद से शिष्य को सभी कुछ मिल जाता है। जब शिष्य के द्वारा गुरु को नित्य सेवित किया जाता है तो शिष्य के जीवन में कुछ भी अशुभ नहीं होता है।

तन्त्रलोक में स्पष्ट कहा गया है–शिव और गुरु दोनों ही समान है। इनमें कोई भी भेद नही है–

"यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
उभयोरन्तरं नास्ति गुरोरपि शिवस्य च"।।

अर्थात् जो गुरु है, वही शिव कहे गये हैं। जो शिव हैं वह गुरु है। गुरु और शिव में कोई अन्तर नहीं है।[8] गुरु की भक्ति से ही शिवरूपी महाबिन्दु की प्राप्ति होती है। काश्मीर शैवदर्शन की ग्रन्थों में गुरु महिमा का विवेचन पदे-पदे मिलता है। शिवसंहिता में भी स्पष्ट कहा गया है–

"गुरूपदिष्टमार्गेण प्रत्यहं यः समाचरेत।
बिन्दुर्सिद्धिः भवेत्तस्य महासिद्धिप्रदायिका।।"[9]

अर्थात् गुरु द्वारा उपदिष्ट मार्ग से जो प्रतिदिन इसका आचरण करता है, उसे महासिद्धिदायक बिन्दुसिद्धि की प्राप्ति होती है। इस शिवरूपी महाबिन्दु की प्राप्ति के बाद कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। शिव कृपा से ही ईशत्व प्राप्त करता है। गुरु ही शिवप्राप्ति मार्ग को प्रशस्त करता है। शिष्य को गुरु के सानिध्य में रहकर ज्ञानप्राप्ति हेतु प्रयास करना चाहिए। अतः शिष्य को अपने गुरु की सेवा करनी चाहिए। ज्ञान प्राप्त करने के लिये शिष्य को सर्वप्रथम पात्र होना चाहिए।

योग्य शिष्य के ऊपर गुरु का शक्तिपात् अतिशीघ्रता से होता है। गुरु के शक्तिपात् से शिष्य गहनतम विषयों को भी अतीशीघ्रता से आत्मसात् कर लेता है। लेखक स्वयं भी संस्कृत शोधार्थी है। अतः प्रस्तुत पुस्तक में त्रुटियों का होना स्वभाविक है। प्रस्तुत पुस्तक शोधार्थी द्वारा संकलित किया गया एक वागन प्रयास है। स्वाध्याय के साथ-साथ अपनी लेखनकला का अभ्यास करते हुए प्रस्तुत पुस्तक का लेखन किया गया है। यह प्रयास गुरुजनों के आशीर्वाद सहित मेरे सहपाठियों की प्रेरणा का परिणाम है। संस्कृत विद्वान् एवं सभी संस्कृत प्रेमियों से शोधछात्र को सहानुभूति एवं प्रेरणा मिले, ऐसी शोधार्थी की कामना है।

प्रदीप

संदर्भ ग्रंथ :

1. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, 1/1/1
2. विज्ञानभैरवविवृति, पृष्ठसंख्या-7
3. के.सी.पाण्डेय, ऐन हिस्टॉरिकल एण्ड फिलॉसफीकल स्टडी, अभिनवगुप्त, पृष्ठसंख्या-180-183
4. सोमानन्द, शिवदृष्टि, पृष्ठसंख्या-7/107
5. सोमानन्द, शिवदृष्टि, पृष्ठसंख्या-7/121-122
6. सोमानन्द, शिवदृष्टि, आ. 7/114-1
7. तन्त्रलोक, प्रथम आह्निक, पृ. - 22
8. तन्त्रलोक, प्रथम आह्निक, पृ. - 123
9. शिवसंहिता, चतुर्थ पटल, श्लोक सं. -102

प्रथम अध्याय
शैवदर्शन का उद्‍भव एवं विकास

"परं परस्थं गहनादनादिमेकं निविष्टं बहुधा गुहासु।
सर्वालयं सर्वचराचरस्थं त्वामेव शम्भुं शरणं प्रपद्ये"।।

प्रस्तुत कारिका में काश्मीर शैवदर्शन के प्रसिद्ध शैवाचार्य अभिनवगुप्त ने स्वरचित ग्रन्थ **"परमार्थसार"** का मङ्गलाचरण करते हुए कहा है–(मैं अभिनवगुप्त) विश्वोतीर्ण भूमिका पर अवस्थित, माया-तत्त्व से अतिक्रान्त, एक ही चिन्मात्रसत्ता होने पर भी नानारूपधारी रुद्र और क्षेत्रज्ञ नाम वाले प्रमाताओं में अनुस्यूत, सारे पदार्थों का विश्रान्तिस्थान बने हुए और सारे चेतन एवं जड़ पदार्थों में व्यापक आप कल्याणकारी शंकर की शरण में पड़ा हूँ। ऐसे शिवमय गुरु आचार्य अभिनवगुप्त को नमन करते हुए प्रस्तुत पुस्तक का श्री गणेश करके इसका शीर्षक–**"काश्मीर शैवदर्शन का परिशीलन"** रखा गया है। परिशीलन शब्द व्यापक अर्थ को सारांश रूप में समेट लेता है। परिशीलन शब्द "परि" उपसर्ग और "शीलन" शब्द से बना हुआ है–जिसका अर्थ होता है–सामान्य चिन्तन करना। वामन शिवाराम आप्टे ने भी इसके अर्थ को स्पष्ट करते हुए बताया है– परिशीलनम् =(परि+शील्+ल्युट्), स्पर्श करना या सम्पर्क करना, अध्ययन करना आदि।[1]

अतः प्रस्तुत पुस्तक में काश्मीर शैवदर्शन का परिशीलन करने का अथवा सामान्य विषयों को स्पर्श करते हुए अध्ययन करने का वामन प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्याय के नामकरण से ज्ञात होता है कि इसमें शैवदर्शन के उद्‍भव और विकास के संदर्भ में विस्तृत एवं विश्लेषणात्मक जानकारी प्रदान की जाएगी। सर्वप्रथम भारतीय ज्ञानपरम्परा के आधारभूत बिन्दुओं पर चर्चा करनी आवाश्यक है। जिनका वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

भारतीय संस्कृति का सर्वोत्कृष्ट परम लक्ष्य ज्ञान है। इस ज्ञान का मूल आधार दो पक्षों पर सुसज्जित है। वे दो पक्ष इस प्रकार हैं–आगम और निगम। इन्हें अपौरुषेय रचना माना जाता है। भारतीय ज्ञानपरम्परा में बहिरंग साधना का

प्रकाशक ग्रन्थ निगम अर्थात् वेद हैं, तथा अन्तरंग साधना का बोधक ग्रन्थ आगम अर्थात् तन्त्र हैं। अतः भारतीय संस्कृति को निगमागममूलक कहा जाता है।[2] अतः सर्वप्रथम इनके स्वरूप को स्पष्ट करना अनिवार्य है।

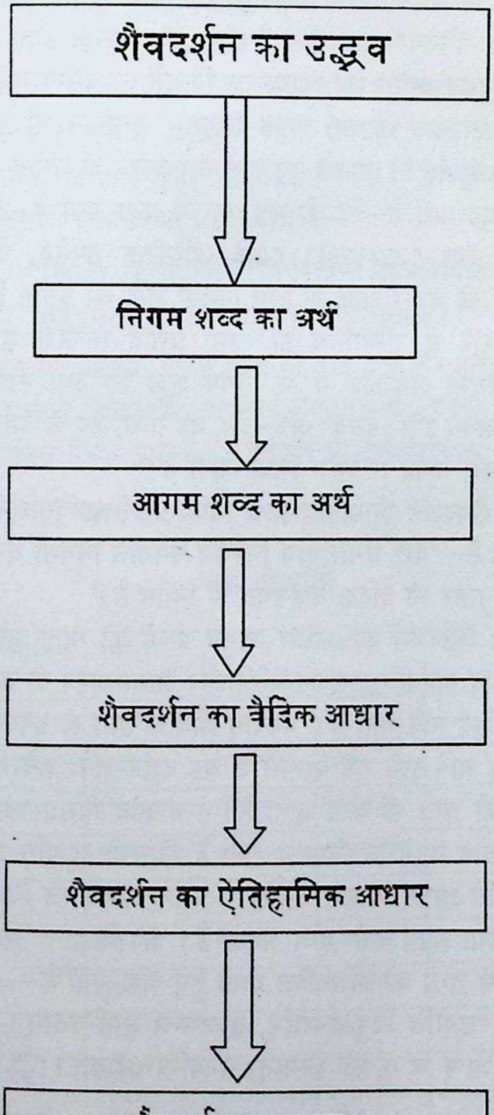

निगम :– **"वैदिक साहित्य एवं संस्कृति"** के लेखक आचार्य कपिलदेव द्विवेदी ने वेद शब्द के पर्यायवाची शब्दों को स्पष्ट करते हुए कहा है–श्रुति, निगम, त्रयी, छन्दस्, आम्नाय एवं स्वाधयाय आदि शब्दों को वेद का अर्थ स्पष्ट करने में ग्रहण किया जाता है।[3] अतः वेदों के लिये निगम शब्द का प्रयोग होता है। निगम का अर्थ सार्थक या अर्थबोधक है। वेदों को साभिप्राय, सुंसगत और गम्भीर अर्थ बताने के कारण "निगम" कहा जाता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वेदों में ऋषियों द्वारा अनुभूत गम्भीर एवं रहस्यात्मक विचारों का परिगणन किया गया है। "निगम" शब्द का अर्थ आचार्य वामन शिवराम आप्टे ने भी स्पष्ट किया है (नि+गम्+घञ्) अर्थात् नि उपसर्ग गम् धातु घञ् प्रत्यय के संयोग से निगम शब्द बनता है, जिसका अर्थ है–वेद के मूल पाठ में कहा गया है–**साढयै साढ्वा शाढेति निगमे।(पा.-६/३/११३)। इसके अतिरिक्त उपवेद, वेद के विधि वाक्य, ऋषियों के वचन** आदि के लिए निगम[4] शब्द का प्रयोग किया गया है। राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित डॉ. उमा प्रसाद पाण्ड़ेय द्वारा सम्पादित संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश में भी निगम शब्द का अर्थ स्पष्ट किया गया है–निगच्छन्ति अनेन इति। इसका अर्थ–वेद, वेद ग्रन्थ, वेद के व्याख्यात्मक ग्रन्थ, वेदांग, वैदिक शब्द आदि से ग्रहण किया जाता है।[5]

काश्मीर शैवदर्शन के प्रसिद्ध ग्रन्थ "ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी" में वेद को निगम कहा गया है–**"वेद्यं धर्माद्युपायं निश्चयं गमयति निगमो वेदः।[6]"** काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार भी वैदिक वाङ्गमय ही निगम है।[7]

आगम : शैवदर्शन का आधार आगम ग्रन्थों को माना जाता है। आगम ग्रन्थों में शिव एवं पार्वती का संवाद वर्णित है। आगमशास्त्र के स्रष्टा और वक्ता स्वयं भागवान् शिव माने जाते हैं।[8] भगवान् शिव के द्वारा ही इनका ज्ञान ऋषियों को प्रदान किया था। इसी गुरु परम्परा से यह दर्शन शनैः शनैः विकसित होता रहा।[9] आगम को तन्त्र भी कहा जाता है। तन्त्र शब्द विस्तार अर्थावली "तन्" धातु "ष्ट्रन्" प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है, जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है– "तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्।" अर्थात् वह शास्त्र जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाए उसे तन्त्र कहते हैं। शैव-सिद्धान्त के प्रसिद्ध ग्रन्थ "कामिकागम" में तन्त्र को परिभाषित करते हुए कहा गया है–

"तनोति विपुलानर्थान्, तन्त्रमन्त्र-समन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात्, तन्त्रमिमिधीयते।।[10]"

अर्थात् तन्त्र विपुल अर्थों के साथ तद् अनुसारी आचारणशील व्यक्तियों का त्राण करता है उसे तन्त्र कहते हैं। तन्त्र का दूसरा नाम आगम है। आगम शब्द को परिभाषित करते हुए आचार्य वाचस्पति मिश्र ने कहा है–**"आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मात् अभ्युदयः–निःश्रेयसोपायाः स आगमः।"** अर्थात् अभ्युदय और निःश्रेयस के उपायों का प्रतिपादक शास्त्र आगम कहलाता है। स्वयं भगवान् शिव आगमों के स्रष्टा और वक्ता कहे जाते हैं।[11]

शैवागमों में उल्लेख मिलता है कि लोकानुग्रह के लिए श्रीकण्ठ मूर्ति भगवान् शिव ने इनका ज्ञान ऋषियों को प्रदान किया था और उसके बाद शिष्य प्रशिष्य परम्परा से आगमों का ज्ञान जगत् में प्रचलित हो गया। "शिवदृष्टि" में भी आचार्य सोमानन्द ने इसका उल्लेख करते हुए कहा है–

"स्थिता शिष्यप्रशिष्याद्यैर्विस्तीर्ण मठिकोदिता।
तदेवमेतद् विहितं मया प्रकरणं मनाक्।।[12]"

शैवदर्शन का आधार आगम ग्रन्थ ही माने जाते हैं। वस्तुतः शैवदर्शन की ज्ञानपरम्परा अत्यन्त विशाल है। काश्मीर शैवदर्शन के आगमों को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया गया है। 1.द्वैतागम 2. अद्वैतागम 3. द्वैताद्वैतागम।

दश शैवागमों का परिचय :– भेद प्रधान शैवागमं

दश शैवागम

क्रम संख्या	आगमात्मक ज्ञान	प्रथम प्राप्तकर्ता	द्वितीय प्राप्तकर्ता	तृतीय प्राप्तकर्ता	भेद	परिमाण
1.	कामिक	प्रणव	त्रिकल	हर	....	परार्द्ध परिमाण
2.	योगज	सुधा	भस्मसंग	प्रभु	5	एक लाख
3.	चिन्त्य	दीप्ताख्या	गोपति	अम्बिका	6	एक लाख
4.	कारण	करणाख्या	शर्व	प्रजापति	7	एक करोड़
5.	अजित	सुशिव	उमेश	अच्युत	4	एक लाख
6.	सुदीप्त	ईश	त्रिमूर्ति	हुताशन	9	एक लाख
7.	सूक्ष्म	सुक्ष्म	भव	प्रभञ्जन	....	एक लाख
8.	सहस्र	काल	भीम	मन	10	....
9.	सुप्रभेद	गणेश	अविघ्नेश	शशी	...	तीन करोड़
10.	अंशुमान	अंशु	अग्र	रवि	12	....

अष्टादश शैवागमों का परिचय (अष्टादश रुद्रागम) :–

क्रम संख्या	आगम	प्रथम प्राप्तकर्त्ता	द्वितीय प्राप्तिकर्त्ता
1.	विजय	अनादि	परमेश्वर
2.	परमेश्वर	श्रीरूप	उशना
3.	नि:श्वास	दशार्ण	शैलसम्भवा
4.	प्रोद्-गीत	शूली	कच
5.	मुखबिम्ब	प्रशान्त	दधीचि
6.	सिद्धमत	बिन्दु	चण्डेश्वर
7.	सन्तान	शिवनिष्ठ	हंसवाहन
8.	नारसिंह	सौम्य	नृसिंह
9.	चन्द्रहास	अनन्त	बृहस्पति
10	भद्र	सर्वात्मा	वीरभद्र
11.	स्वायंभुव	निधन	ब्रह्मा
12.	विरज	तेज	प्रजापति
13.	कौरव्य	ब्रह्मेश	नन्दिकेश्वर
14.	माकुट	शिव	ध्वजाश्रय
15.	किरण	देवपिता	संवर्तक
16.	ललित	आलय	भैरव
17.	आग्नेय	व्योम	हुतभुक्
18.	....	शिव	....

चौंसठ शैवागमों का परिचय :– इनके अधिष्ठातृदेव भैरव माने जाते हैं।

श्रीकण्ठीसंहिता के अनुसार चौंसठ शैवागम

क्रम संख्या	आगम की कोटि	आगम का नाम
1.	भैरवतन्त्र 1-8	स्वच्छन्दतन्त्र, भैरव, चण्ड, क्रोध, उन्मत्तभैरव, असिताङ्गभैरव, महोच्छुष्म, कपालीश
2.	यामलतन्त्र 9-16	ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, स्वच्छन्दयामल, रुद्रयामल, अथर्वण, रुद्र, वेताल
3.	मततन्त्र 17-24	रक्त, लम्पट, रश्मिमत, मत, चालिका, पिङ्गला, उत्फुल्ल विश्वाद्य
4.	मंगलतन्त्र 25-32	पिचुभैरवी, तन्त्रभैरवी, तत, ब्राह्मीकला, विजया, चन्द्रा, मंगला, सर्वमंगला
5.	चक्राष्टक 33-40	मन्त्रचक्र, वर्णचक्र, शक्तिचक्र, कलाचक्र, विन्दुचक्र, नादचक्रहृ, गृह्यचक्र, खचक्र
6.	बहुरूपतन्त्र 41-48	अन्धक, रुरुभेद, अज, मूल, वर्णमण्ट, विड्डग, मात्रदान, ज्वालिन
7.	वागीश 49-56	भैरवी, चित्रिका, हंसा, कादम्बिका, हृल्लेखा, चन्द्रल्लेखा, विद्युल्लेखा, विद्युमत
8.	शिखातन्त्र 57-64	भैरवी, वीणा, वीणामणि, संमोह, ड्रामर, अथर्वक, कबन्ध, शिरश्छेद ॥

इनमें सर्वाधिक प्रमुख मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम्, स्वच्छन्दतन्त्रम्, रुद्रायामलतन्त्रम्, नेत्रतन्त्रम्, स्वायम्भुवतन्त्रम्, विज्ञानभैरवम्, नैश्वासतन्त्रम्, शिवसूत्रम्[13] आदि हैं ।

"विज्ञानभैरव" की उत्पत्ति देवी और भैरव के मुख से मानी गई है।[14] इस तन्त्र में काश्मीर शैवागम के ज्ञान और योगपक्षों का वर्णन किया गया है। अतः काश्मीर शैवदर्शन के अध्ययन के लिये आगम ग्रन्थों का गुरुमुख से ज्ञान होना अनिवार्य है। इनके ज्ञान के बिना शैवदर्शन को समझना दुष्कर कार्य है।

शैवदर्शन का वैदिक आधार : वैदिक काल में आर्यों ने प्रकृति के वैभव से प्रभावित होकर विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करनी प्रारम्भ कर दी थी। इनमें रुद्र की उपासना एवं भक्ति का भी साक्षात्कार होता है। भारतीय धर्म का आधार वेदों को माना जाता है।

शैवधर्म के उत्थान एवं विकास का अवलोकन करने के पश्चात् यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि अपौरुषेय वेद में इसके बीज मिलने का प्रमाण है, ऐसा

कहना कठिन है। लेकिन वैदिक साहित्य में वैर्दिक रुद्र देवता के प्रमाणों का साक्षात्कार सवर्त्र उपलब्ध है। कालान्तर एवं समय के अनुसार वैदिक रुद्र देवता भारतीय संस्कृति में शनैः शनैः नीलकण्ठ, भोलेनाथ तथा शिव आदि नामों से प्रचलित हो गये थे। इस अध्याय में वैदिक रुद्र के बदलते हुए स्वरूप को केन्द्र में रखकर विस्तृत जानकारी देने का वामन प्रयास किया गया है। यह कहाँ तक सिद्ध एवं प्रमाणिक है इसका निर्णय संस्कृत विद्वानों एवं शैवसाधको, काश्मीर शैव प्रेमियों के मानस पटल पर निर्भर करता है। एक शोधार्थी की अल्प दृष्टि से यहाँ कतिपय तथ्यों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिये "ऋग्वेद", "यजुर्वेद" तथा "अर्थववेद" में वर्णित रुद्र का स्पष्ट विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। वैदिक काल में देवताओं को तीन भागों में विभाजित किया गया है–

1. आकाशस्थानीय देवता।
2. पृथ्वीस्थानीय देवता।
3. वायुस्थानीय देवता।

इनमें वैदिक रुद्र वायुस्थानीय देवता माने गये हैं। वेदों में रुद्र का वर्णन पद-पद पर प्राप्त होता है।

ऋग्वेद रुद्र का वर्णन : ऋग्वेदीय सूक्तों में रुद्र का जो स्वरूप निरूपित है, उसके अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि–रुद्र अत्यन्त भयावह देवता हैं, उनकी स्तुति भयनिवारण हेतु की गई है। सम्पूर्ण "ऋग्वेद" में रुद्र की स्तुति तीन पूर्णसूक्तों में वर्णित है।[15]

इन तीन सूक्तों में क्रमशः 1/114 अध्याय में 11 मन्त्र, 2/33वाँ अध्याय जिसमें 15 मन्त्र तथा 7/46 वें अध्याय में कुल 4 मन्त्र वर्णित हैं। सम्पूर्ण योग से तीनों सूक्तों में रुद्र सम्बन्धी कुल 30 मन्त्र व्याख्यायित हैं। इनके अतिरिक्त रुद्र की स्तुति सोम एवं इन्द्रादि देवताओं के साथ भी की गई है। जिनका वर्णन ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद में रुद्र प्रकृति के विनाशकारी शक्तियों के प्रतीक हैं। इसलिये उसे वर्षा, विद्युतीय, झंझावात और घनघोर गर्जन का देव माना गया है।

रुद्र की हिंसा से सभी प्राणीजन त्रस्त हैं अतः उनसे प्रार्थना करते हैं–"वे बूढ़े बच्चे, सन्तानोत्पादक युवक, गर्भस्थ शिशु, पिता, माता और स्तुतिकर्त्ता की हिंसा न करें।[16]" इसी प्रकार से ग्रामीणजन उनसे पशुओं की हिंसा भी न करने की प्रार्थना की है।[17] रुद्र के द्वारा पशुओं पर हिंसा न करने से पशु बच जाते हैं। अतः रुद्र को "पशुप" उपाधि प्रदान की गई है।[18] सभी ग्रामीण प्रार्थना करते हैं–"आप

अपने पशुहन्ता, मानवहन्ता के रूप को हमसे दूर ही रखें। अतः रुद्र को जनों द्वारा गोधन और नृघ्न भी कहा है।[19]"

ऋग्वेद में अनेक स्थलों में रुद्र को रोगनिवारक–वैद्य भी कहा गया है। उनके पास सहस्त्रों औषधियाँ हैं।[20] जिनसे वे समस्त व्याधियों का निवारण करते हैं। इस प्रकार से ज्ञात होता है कि वे पहले रोग फैलाते होंगे और फिर स्वयं ही उनका निदान करते होंगे। क्योंकि ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर उनसे रोग न फैलाने की प्रार्थना की गई है। उनसे प्राप्त औषधि से मनुष्य दीर्घायु प्राप्त कर सकता है।

अतः मन्त्र में स्पष्ट कहा है–"हे रुद्र ! आपके द्वारा दी गई कल्याणकारी औषधि शतवर्षों तक जीवित रहें तथा आप ही हमारे शरीरस्थ रोगों को दूर कर दें।[21]" अनेक मन्त्रों में रुद्र को अन्नप्रदाता भी कहा गया है।[22]

ऋग्वेद में रुद्र मनुष्य के पापों का निवारण करने में समर्थ है अतः उन्हें पाप-निवारक देवता भी कहा गया है।[23] ऋग्वेद में रुद्र के हाथ में बाण और आयुध होने का वर्णन है। जिससे वे मनुष्यों और पशुओं को मारते हैं।[24] अपने तेजोमय बाणों से वे पृथ्वी पर हा-हा-कार मचाते हैं। अतः सभी ऋषिगण मिलकर उनसे प्रार्थना करते हैं "हे तेजस्वी, सामर्थ्यशील, आयुधधारी व महती दुर्बुद्धि हमें छोड़ दे। हे रुद्र ! अपनी धनुष की डोरी को यजमान के प्रति शिथिल करो।[25]" इस प्रकार से उनकी स्तुति की गई है।

ऋग्वेद में रुद्र को मरुतों का पिता कहा गया है।[26] जिनको पृथ्वीस्थ व स्वर्गस्थ मनुष्यों के ऐश्वर्य के द्वारा जाना जा सकता है। मरुतपिता रुद्र से ऋषिगण वंशवृद्धि हेतु प्रार्थना करते हैं–"वे पुत्रों और पौत्रों में अनेक हो जायें।[27]" आप ही ऐश्वर्यों में सर्वाधिक श्रेष्ठ हैं। इसलिए उनको बहुधनदाता और साधुओं का पालक कहा गया है।[28] ऋग्वेद में रुद्र के शारीरिक बल का भी वर्णन किया गया है। रुद्र को बलशाली देवता माना गया है।

रुद्र अपने बल और पराक्रम से शत्रुओं का नाश करते हैं और समस्त संसार की रक्षा करते हैं। अतः वे सर्वाधिक बलशाली हैं।[29] रुद्र का स्वरूप श्वेततवर्णी एवं बभ्रूवर्णी है।

अतः उन्हें बभ्रूवर्णी भी कहा गया है।[30] उनका स्वरूप एकतरफ सुन्दर और दुसरी तरफ भयंकर देवता के रूप में वर्णित है।वे अलंकार और पूजनीय भिषक को धारण करते हैं।[31] वे रथ पर आरुढ होकर चलते हैं। ऋग्वेद में उनको अनेक नामों से जाना गया है। जैसे ऋदूदर, क्षयद्वीर, सुशिप्र, बभ्रू, पुरुरूप, चेकितान, वज्रबाहु आदि।

यजुर्वेद में रुद्र का वर्णन :– यजुर्वेद में रुद्र के स्वरूप का उत्तरोतर विकास परिलक्षित होता है। यजुर्वेद में रुद्र का कल्याणकारी एवं भयंकर दोनों रूपों का वर्णन मिलता है। यजुर्वेद में शुक्ल व कृष्ण दोनों शाखाओं के दो प्रमुख सूक्त त्र्यम्बक होम[32] और शतरुद्रीय[33] में रुद्र के नवीन स्वरूप का वर्णन मिलता है। त्र्यम्बक में रुद्र को पशुपति व भिषक कहा गया है। शतरुद्रीय में रुद्र के शतवन में 66 मन्त्रों का वर्णन है जिनमें मांगलिक व संहारिक रूपों में भेद किया गया है। यजुर्वेद में रुद्र के लिये भव, शर्व, शंभू, शंकर आदि नामों का भी उल्लेख किया गया है। त्र्यम्बक होम में रुद्र को "कृतिवासा" उपाधि देने का वर्णन है।[34] समस्त रोगों का नाश करने के लिये रुद्र की स्तुति का उल्लेख यजुर्वेद में किया गया है। एक स्थल पर उनको समस्त रोगों को नष्ट करने वाले तथा गौ, अश्व व पुत्र-पौत्रादि के लिये समस्त रोगों को नष्ट करने वाली ओषधी को प्रकट करने की प्रार्थना की गई है।[35]

शतरुद्रीय सूक्त में रुद्र का विकासात्मक रूप परिलक्षित होता है। इसमें रुद्र का निर्माता और हन्ता के रूप में दोनों का वर्णन किया गया है। एक स्थल पर स्तोता उनको नमस्कार करते हुए कहते हैं–"मैं आपके क्रोध, बाहुओं और बाणों को नमस्कार करता हूँ।[36]" यजुर्वेद में रुद्र को रोग निवारक वैद्य भी कहा गया है। वे समस्त पशुओं को रोग मुक्त बनाने में समर्थ हैं। इसलिये रुद्र को प्रथमो दिव्यभिषक[37] एवं ओषधीनाम् पतये[38] कहकर सम्बोधित किया गया है। यजुर्वेद के ऋषि के अनुसार रुद्र का सामान्य से सामान्य जन भी दर्शन कर सकते हैं।

डॉ. भाण्डारकर लिखते हैं–"खुले हुए मैदानों में काम करते हुए लोग भी विद्युत की हल्की आभा से अरुणीभूत काले मेघ को देखते हैं।[39]" इस रूप में रुद्र की काले मेघ से निकलती हुई विद्युत से समानता बताई गई है। इसके अतिरिक्त रुद्र को अधिवक्ता[40] सबसे प्रथम एवं अग्रणी[41] कहना भी जनप्रिय का प्रमाण है। शतरुद्रीय सूक्त में उसके चारित्रिक विकास का वर्णन मिलता है। वे बभ्रूवर्णी, अरुणवर्णी तथा लोहितवर्णी कहे जाने का वर्णन है।[42]

शतरुद्रीय में उनके लिये कदर्पी, नीलग्रीव, शितिकण्ठ, विशिखास, सहस्राक्ष, व्युत्पकेशी-वामन, नीललोहित आदि विशेषणों का प्रयोग हुआ है।[43] इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि रुद्र का स्वरूप शनैः शनैः परिवर्तित होता चला गया। यजुर्वेद में रुद्र का भयंकर एवं कल्याणकारी देव होने का वर्णन स्पष्ट किया गया है। ऋग्वेद की अपेक्षा रुद्र को यहाँ कल्याणकारी, रोगनिवारक देव, उपदेशक एवं पशुपति कहा गया है। यह उसके विकासात्मक स्वरूप को स्पष्ट करता है।

अथर्ववेद में रुद्र का वर्णन : अथर्ववेद में भी रुद्र के विकासात्मक रूप का वर्णन पदे पदे परिलक्षित होता है। अथर्वेद में रुद्र सम्बन्धी स्तुतिपरक सम्पूर्ण सूक्त केवल ग्यारहवें अध्याय का दूसरा सूक्त, जिसमें 31 मन्त्रों का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार पहन्द्रवे अध्याय के पाँचवें सूक्त में एक से पन्द्रह के मन्त्रों में रुद्र की स्तुति की गई है। यह व्रात्य सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। अथर्ववेद में रुद्र के विनारकारी रूप का सर्वाधिक वर्णन हुआ है। रुद्रदेव क्रोधित होने पर द्विपदों और चतुष्पदों का संहार करते हैं।[44]

अतः सभी जनसाधारण उनसे हिंसा न करने की प्रार्थना करते हैं। रुद्र की स्तुति करते हुए जन कहते हैं कि हे देव ! हमारे माता पिता और पालन करने वाले पुरुषों पर हिंसा मत करो।[45] रुद्र को अग्नि का देवता माना गया है। अथर्ववेद में रुद्र के अग्नि रूप का स्पष्ट वर्णन किया गया है–"मा नो रुद्र मा विषेना नः संस्त्रा दिव्येनाग्निना। अन्यत्रास्मद् विद्युतम् पाययैताम्।[46]" स्तुतिकर्ता की स्तुति से प्रसन्न होने के बाद रुद्र अन्तरिक्ष में स्थित होकर अयाज्ञिकों का संहार कर देते हैं। रुद्र को "पशुपति" की उपाधि दी गई है।[47] अथर्ववेद में उनके पाँच प्रमुख पशुओं का वर्णन है। गाय, अश्व, मनुष्य, बकरी तथा भेड का उल्लेख किया गया है।[48] अथर्ववेद में रुद्र के पुरुषविध रूप का वर्णन भी स्पष्ट उल्लिखित है। इसमें रुद्र के चक्षु, उदर, दाँत, त्वचा आदि का वर्णन मिलता है। अतः आगे चलकर रुद्र ही पौराणिक युग में शिव का रूप बना। अतैव अथर्ववेद में उनको विशिष्ट उपाधियाँ दी गई हैं। जैसे–सहस्राक्ष[49], पशुपति, सहस्रग्निं शतवधं[50], भूतपति[51] आदि।

इसी प्रकार अन्य वैदिक ग्रन्थों में भी रुद का साक्षात्कार होता है। शतपथ ब्राह्मण में शुक्ल एवं कृष्ण में रुद्र के प्रति शतरुद्रीय स्तुति प्राप्त होती है। ऐतरेय ब्राह्मण में रुद्र की जन्मकथा का वर्णन मिलता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में रुद्र को हर कहा गया है। इसमें ऋषियों ने रुद्र को ही जगत् कारण ब्रह्म माना है। वही भोक्ता भोग्य और प्रेरक है। श्वेताश्ववतरोपिषद् में रुद्र एवं शिव का एकसमान वर्णन है, जिससे स्पष्ट होता है कि रुद्र ही शिव है। इसके लिये श्वेताश्वतरोपनिषद् का अध्ययन अनिवार्य है। इसी प्रकार से केनोपनिषद्, मैत्रायणी उपनिषद्, प्रश्नोपनिषद् एवं सूत्रग्रन्थों में भी रुद्र एवं शिव का वर्णन किया गया है।

शैवदर्शन का ऐतिहासिक आधार : काश्मीर शैवदर्शन का ऐतिहासिक आधार भी सिद्ध करता है कि काश्मीर शैवधर्म अति प्राचीन है। हड़प्पा एवं मोहन जोदड़ो की खुदाई में शिवलिङ्ग का प्राप्त होना इसकी प्राचीनता का प्रमाण है।

इस खुदाई में लिङ्ग एवं योनि के चिह्नों की प्राप्ति हुई है। इससे स्पष्ट होता है कि शैवधर्म का इतिहास ताम्रपाषाण युग का अथवा उससे भी पूर्वकाल का है।[52] सिन्धु घाटी में प्राप्त अवशेषों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि उत्तर भारत में वैदिक आर्यों की सभ्यता के प्रवर्तन से पूर्व जो लोग निवास करते थे सम्भवतः वे शैवधर्म के अनुयायी थे। मोहन जोदड़ो से भगवान् शिव की तीन मुख वाली मूर्ति वर्तमान शिव की त्रिमूर्ति के समान है। यह मूर्ति योगासन की ज्ञानमुद्रा में है जो शैवदर्शन की ज्ञानमुद्रा को स्पष्ट करती है । अभिनवगुप्त ने भी "अनुभवनिवेदनस्तोत्र" में प्रमाणित किया है प्राचीन भारत के निवासी शाम्भवी मुद्रा नामक शैवदर्शन की अति उत्कृष्ट योग साधना को जानते थे।

इसमें वर्णन करते हुए कहा गया है–**"अर्धोद्घाटितलोचनः स्थिरमना नासाग्रदत्तेक्षणश्चन्द्रर्कावपि लीनतामुप्गतौ त्रिस्पन्दभावान्तरे। ज्योतिः पमशेषबाह्य रतिमेकं पुमांसं परं तत्पदमेति वस्तु चरमं वाच्यं किमत्राधिकम्।[53]"**

शैवदर्शन के उत्कृष्ट और सूक्ष्मतर सिद्धान्तों की साक्षात् अनुभूति साम्भव योग के अभ्यास से हो सकती है। योग को माहेश्वर की देन माना जाता है। इसके विषयों को आत्मसात् करने के लिये योगसाधना करना भी महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस प्रकार जान मार्शल द्वारा लिखित पुस्तक "मोहन जोदड़ो एण्ड दि सिविलिजेशन" में शैवधर्म के संदर्भ अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान की गई है। जिनका अध्ययन करना अति आवश्यक है।

शैवदर्शन का प्रारम्भ :– शैवदर्शन की ज्ञानपरम्परा का मूल आधार आगम ग्रन्थ है। आगम ग्रन्थों के सृष्टा एवं वक्ता स्वयं भगवान् शिव ही माने जाते हैं।[54] इनमें शिव एवं पार्वती के संवादों का संग्रह किया गया है। शैवाचार्यों के अनुसार आगम ग्रन्थ शिव का प्रकाशन हैं। इसको सहर्ष स्वीकार भी किया जा सकता है, क्योंकि काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार वाणी अपने परा स्तर पर शिव के साथ अविभाज्य अवस्था में रहती है, जो अपने विकास के स्तर पर बाह्य प्रकट होती है।[55] इसके अतिरिक्त यदि शैवागम शिवज्ञान प्राप्त मुक्त पुरुष की रचना है तो भी उन्हें शिव की ही रचना माना जाएगा, क्योंकि शिवज्ञानप्राप्त व्यक्ति शिवरूप ही कहा जाता है। शैवदर्शन के उद्भव का स्पष्टीकरण यहाँ दो प्रकार से संकलित है। जिसका वर्णन इस प्रकार है।

प्रथम मत :– आचार्य सोमानन्द का मत - शैवदर्शन के उद्भव पर प्रकाश डालते हुए आचार्य सोमानन्द "शिवदृष्टि" ग्रन्थ के सातवें आह्निक् में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। अति प्राचीनकाल में शैवदर्शन ऋषि महात्माओं के पास

था। कलयुग के आ जाने पर या उसके प्रभाव से वे ऋषि कलापि ग्राम की मानव दृष्टि से किन्ही अदृश्य स्थानों पर चले गये तथा शैवविद्या का उच्छेद सा हो गया था। तत्पश्चात् एक बार भगवान् कण्ठ विचरण करते हुए हिमालय पर्वत पर आये और उन्होंने दुवार्सा मुनि से शैवदर्शन का प्रचार प्रसार करने का उपदेश दिया। तत्पश्चात् मुनि दुर्वासा ने शैवदर्शन की ज्ञानपरम्परा को आगे बढ़ाने के लिये अपने शिष्य (मानस पुत्र) त्र्यम्बकादित्य को उत्पन किया और शैवागम सम्मत अद्वैत शैवदर्शन की शिक्षा दी। त्र्यम्बकादित्य ने इसका अध्ययन अध्यापन पुनः प्रारम्भ किया।[56] आगे चलकर यह शास्त्र त्र्यम्बक के नाम पर "त्र्यम्बकशास्त्र" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[57] इस प्रकार प्रथम त्र्यम्बकादित्य अपने शिष्य त्र्यम्बकादित्य द्वितीय को शैवदर्शन की विद्या का प्रचार प्रसार करने हेतु नियुक्त किया और सिद्धलोक चले गये। इसी तरह सिद्धों की चौदहवीं पीढ़ी बीत गयी और पन्द्रहवीं पीढ़ी में फिर से त्र्यम्बकादित्य एक बार तीर्थ पर गये। वहाँ उन्होंने एक ब्राह्मण कन्या के साथ विवाह किया। त्र्यम्बकादित्य के पुत्र संगमादित्य का जन्म हुआ।

संगमादित्य भी भ्रमण करते हुए काश्मीर आ गये तथा यहीं पर निवास करने लगे। इस प्रकार त्र्यम्बकमठिका कैलाश से आकर काश्मीर में बस गयी। इसी क्रम में संगमादित्य के बाद वर्षादित्य,अरुणादित्य एवं आनन्द की तीन पीढ़ीयाँ बीत गयी और बींसवी पीढ़ी में सोमानन्द का जन्म हुआ। पीढ़ीयों को क्रमशः देखने पर स्पष्ट है कि–प्रथम त्र्यम्बकादित्य के बाद चौदह पीढ़ीयाँ का क्रम चला तथा पहन्द्रवीं पीढ़ी में पुनः त्र्यम्बकादित्य आये।

इसके पश्चात् सोलहवीं पीढ़ी में संगमादित्य, सत्रहवीं पीढ़ी में वर्षादित्य, अठारहवीं में अरुणादित्य तथा उन्नीशवीं पीढ़ी में आनन्द का जन्म हुआ। बीसवीं पीढ़ी में आचार्य सोमानन्द का जन्म हुआ। "शिवदृष्टि" में स्वयं सोमानन्द ने इसका उल्लेख किया है।

> सिद्धस्तद्वत्सुतोत्पत्त्या सिद्धा एवं चतुर्दश ।
> यावत्पंचदशः पुत्रः सर्वशास्त्रविशारदः ।। १४
>
> स कदाचिल्लोकयात्रामासीनः प्रक्षेते ततः ।
> बहिर्मुखस्य तस्याथ ब्राह्मणी काचिदेव हि।। १५
>
> रूपयौवनसौभाग्यवसुन्धरा सा गता दृशम् ।
> ष्टा तां लक्षणैर्युक्ता योग्या कन्यामथात्मनः ।। १६
>
> सधर्मचारिणीं सम्यग्गत्वा तत्पितरं स्वयम् ।

अर्थयित्वा ब्राह्मणीं तामनयामासय यत्नतः ।। १७

ब्राह्मणेन विवाहेन ततो जातस्थाविधः।
तेन यः स च कालेन कश्मीरेष्वागतो भ्रमन्।। १८

नाम्ना स संगमादित्यो वार्षादित्योऽपि तत्सुतः।
तस्याप्यभूत् स भगवानर्यूणादित्यसंज्ञकः ।। १६

आनन्दसंज्ञकस्तस्मादुद्धभूव तथाविधः।
तस्मादस्मि सनुद्भूतः सोमानन्दाख्य ईदृशरू।। २०[58]

आचार्य सोमानन्द को प्रत्यभिज्ञादर्शन का प्रणेता माना जाता है। इसी प्रकार से शैवदर्शन का उद्भव एवं विकास हुआ। इसके पश्चात् उत्पलदेव एवं अभिनवगुप्त आदि हुए।

प्रत्यभिज्ञादर्शन के त्रिविध आचार्य

1. **आचार्य सोमानन्द**—शिवदृष्टि ग्रन्थ के लेखक ।
2. **आचार्य उत्पलदेव**—अधोलिखित ग्रन्थों के लेखक
   - ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका
   - ईश्वरप्रत्यभिज्ञावृति
   - ईश्वरप्रत्यभिज्ञाटीका
   - सिद्धित्रयी
   - शिवदृष्टिवृत्ति
   - शिवस्तोत्रावली
3. **आचार्य अभिनवगुप्त**—अधोलिखित ग्रन्थों के लेखक
   - तन्त्रालोक
   - तन्त्रसार
   - मालिनीविजयवार्तिक
   - परात्रिंशिकाविवरण
   - शिवदृष्टि लोचन
   - ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी
   - परमार्थसार
   - परमार्थचर्चा
   - बोधपञ्चदशिका ।

द्वितीय मत :– स्वामी लक्ष्मण जू महारज जी का मत–काश्मीर शैवदर्शन के सिद्धहस्त आचार्य एवं सिद्धगुरु स्वामी लक्ष्मण जू जी महाराज ने अपनी पुस्तक **"त्रिक शास्त्र रहस्य प्रक्रिया"**[59] के प्रारम्भ में ही शैवशास्त्र के उद्‌भव एवं विकास का स्पष्ट उल्लेख किया है। जिसका वर्णन इस प्रकार है–पूर्वकाल में महात्मा ऋषियों के मुख में शिवशास्त्रों का रहस्य ठहरा हुआ था। कलियुग के आने पर वे सभी ऋषि दुर्गम स्थानों पर चले गये। फलतः शिवशास्त्रों का सम्प्रदाय का पूर्णतः लुप्त हो गया। कुछ समय पश्चात् शिवशास्त्रों को इस संसार में पूर्णतः स्थापित करने के लिये जब दुर्वासा ऋषि ने श्रीकण्ठनाथ की आज्ञा प्राप्त की तथा अपने योगबल से तीन मानसिक पुत्रों को उत्पन्न किया। उनका नाम त्र्यम्बकनाथ, आमर्दकनाथ और श्रीनाथ था।

भगवान् दुर्वासा ऋषि के द्वारा त्र्यम्बकनाथ ने सभी अद्वैतप्रधान भैरवशास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। आमर्दकनाथ ने उसी ऋषि से द्वैतप्रधान सभी शिवशास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। श्रीनाथ ने उसी ऋषि से सभी द्वैताद्वैत प्रधान रुद्रशास्त्रों का रहस्य प्राप्त किया। इस प्रकार अद्वैत, द्वैत और द्वैताद्वैत त्रिक शास्त्रों की तीन शाखायें प्रारम्भ हो गई। इसके पश्चात् अद्वैत भैरव शास्त्र के प्रवर्तक त्र्यम्बकनाथ ने अपने योगबल से एक मानसिक पुत्री को उत्पन्न किया, जो अर्धत्र्यम्बक नाम से आज भी प्रसिद्ध है। इस प्रकार से त्र्यम्बक शाखा, अर्धत्र्यम्बकशाखा, आमर्दकशाखा और श्रीनाथ शाखा अर्थात् साढ़े तीन शाखायें प्रादुर्भूत हुई।

कालान्तर में त्र्यम्बकनाथ ने इन भैरवशास्त्रों को जीवित रखने के लिये एक मानसिक पुत्र को उत्पन्न किया और उसको भैरव शास्त्रों का ज्ञान प्रदान किया। इस प्रकार चौदह पीढ़ियों तक त्र्यम्बकनाथ की शाखा से चौदह सिद्ध उत्पन्न हुए। ये सभी सिद्ध भैरवशास्त्रों के मर्मज्ञ तथा पूर्णतया निष्णात और सिद्धहस्त थे। इस प्रकार पन्द्रहवाँ मानसिक पुत्र त्र्यम्बकनाथ से उत्पन्न हुआ लेकिन वह मलावृत्त होने के कारण मानसिक पुत्र को उत्पन्न करने में असमर्थ रहा। तत्पश्चात् उसने एक सुयोग्य कन्या से विवाह किया। इससे जिस पुत्र का जन्म हुआ वह भी सर्वगुण सम्पन्न था। इसका नाम संगमादित्य था। शिवशास्त्रों का यह सोलहवाँ सिद्ध आचार्य हुआ। इसके पुत्र वर्षादित्य हुआ, वर्षादित्य से अरूणादित्य हुआ। इसके बाद अरूणादित्य से आनन्द नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह भी शिवशास्त्रों का सिद्ध हस्त आचार्य था। कुछ समय के बाद आनन्द से सोमानन्द ने जन्म लिया। इन्होंने "शिवदृष्टि" नामक उत्कृष्ट शास्त्र की रचना की।

इस प्रकार आदि सिद्ध से लेकर त्रिकशास्त्रों की परम्परा पिता पुत्र क्रम से

चलती गई। आचार्य सोमाननद से लेकर आचार्य क्षेमराज तक इस त्रिक शास्त्र का सम्प्रदाय गुरु-शिष्य परम्परा से आगे प्रसारित होता चला गया। इसी गुरु शिष्य परम्परा में सोमानन्द के सुप्रसिद्ध शिष्य प्रत्यभिज्ञाकार श्री उत्पदेव हुए। उन्होंने "शिवदृष्टि" ग्रन्थ पर व्याख्या प्रस्तुत की।

उत्पलदेव के शिष्य लक्ष्मणगुप्त हुए। यह त्रिकशास्त्रों के उद्‌भट् विद्वान् और सुप्रसिद्ध आचार्य माने गये। इनकी शिष्यों में सूर्य के समान देदीप्यमान समस्त शास्त्र पारंगत आचार्य अभिनवगुप्त हुए। त्र्यम्बकनाथ शाखा को प्रसारित करने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थ "तन्त्रालोक" सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। इस प्रकार काश्मीर शैवदर्शन का उद्‌भव एवं विकास हुआ।

2. शैवदर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय

शैवदर्शन के प्रारम्भ हिमालय से अथवा काश्मीर प्रदेश से माना जाता है। समयानुसार इस दर्शन का प्रचार-प्रसार बढ़ने लगा और विभिन्न सम्प्रदायों में विभाजित हो गया। इस विषय को समझना और समझाना अत्यन्य कठिन है। क्योंकि सम्प्रदायों को लेकर शैवाचार्यों में मतभेद है। उपनिषदों एवं पुराणों में शैवधर्म की पर्याप्त जानकारी उपलब्ध होती है। पुराणों में शैवधर्म के पाशुपत, शैव, कालामुख और कापालिक चार सम्प्रदायों का वर्णन किया गया है। शैवदार्शनिक इनको अपने मतानुसार मानते हैं। यह अत्यन्त गम्भीर विषय है। भौगोलिक आधार पर भी इसका वर्गीकरण करना कठिन है। तथापि कुछ प्रमाणिक बिन्दुओं के आधार पर आगमों एवं भौगोलिक आधार शैवदर्शन का विभाजन इस प्रकार से समझ सकते हैं।

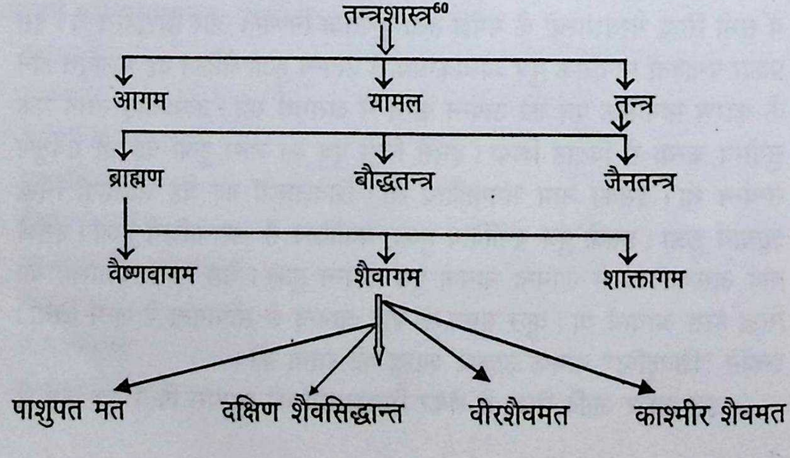

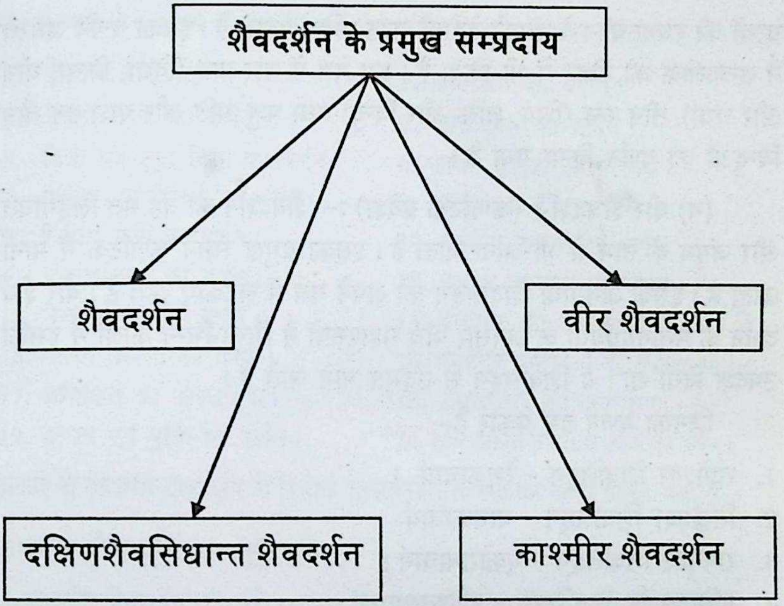

(क) नकुलीशपाशुपत (गुजरात प्रदेश) :– नकुलीशपाशुपत शैवदर्शन को महापाशुपत के नाम से भी जाना जाता है। माधवाचार्य ने अपने सर्वदर्शनसंग्रह में नकुलीश पाशुपत शैवदर्शन का उल्लेख किया है। पाशुपत शैवमत का प्रचार पश्चिमी भारत के गुजरात प्रदेश से माना जाता है। इस मत के संस्थापक का नाम नकुलीश है। अतः इसका नाम नकुलीश पाशुपत पड़ गया। शैवाचार्यों की मान्यता है कि भगवान् शिव ने स्वयं नकुलीश का रूप लेकर पाशुपत सूत्रों की रचना की। इनमें कर्मकाण्ड़ों एवं जीवन के आचारों का वर्णन किया गया है। अतः यह ग्रन्थ सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ को कौणिन्य ने पञ्चार्थी भाष्य के साथ अनन्त शयन ग्रन्थमालाओं में प्रकाशित किया है। इस दर्शन की दृष्टि द्वैतवादी है। पाँच विषयों की इसमें मुख्य रूप से चर्चा की गई है। जिनमें कार्य, कारण, योग, विधि और दुःखान्त। अतः यह सम्प्रदाय पञ्चार्थ सम्प्रदाय भी कहलाता है।

(ख) दक्षिणशैवसिद्धान्त शैवदर्शन (तमिलनाडु प्रदेश) :– शैवदर्शन का दुसरा मत दक्षिण शैवसिद्धान्त के नाम से प्रचलित है। यह मत तमिलनाडु में है, जो शैवधर्म का दुर्ग कहा जाता है। शैवाचार्यों के मतानुसार भगवान् शिव के पाँच मुखों से 28 शैवागमों का प्रादुर्भाव मानते हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण शैवमत अनुयायियों ने भगवान् शिव की तपस्या करके भक्तिरस एवं सिद्धान्त सम्बन्धी

ग्रन्थों की रचना की। वे उनको वेद की तरह पवित्र मानते हैं। इनका वर्णन जयरथ ने तन्त्रालोक की टीका में भी किया है। इस मत में चार पाद (विद्या, क्रिया, योग और चर्या), तीन रत्न (शिव, शक्ति और बिन्दु) तथा पशु, पति और पाश इन तीन बिन्दुओं का वर्णन किया गया है।

(ग) वीर शैवदर्शन (कर्णाटक प्रदेश) :— शैवदर्शन का यह मत लिङ्गायत और जंगम के नाम से भी जाना जाता है। इसका प्रमुख स्थान कर्णाटक में माना जाता है। इसके अनुयायी शिवलिङ्ग को अपने गले में लटकाए रहते हैं। वीर शैव दर्शन के मतानुयायियों के अनुसार पाँच महापुरुषों ने भिन्न-भिन्न कालों में इसका उपदेश दिया था। ये शिवलिङ्ग से उद्भूत माने जाते हैं।

जिनका वर्णन इस प्रकार है—

1. सोमेश्वर शिवलिङ्ग - रेणुकाचार्य ।
2. सिद्धेश्वर शिवलिङ्ग - वासकाचार्य ।
3. रामनाथ शिवलिङ्ग - एकोरामाचार्य।
4. मल्लिकार्जुन शिवलिङ्ग - पण्डितारावध्य।
5. विश्वनाथ शिवलिङ्ग - विश्वाराध्य।

वीर शैव मत के प्रसार के लिये इन पाँचों आचार्यों ने पाँच सिंहासनों की अलग अलग जगह स्थापना की। जिनका वर्णन इसक प्रकार है—

1. वीर सिंहासन : रम्भापुरी मैसूर।
2. सद्धर्भ सिंहासन : उज्जयिनी, मध्यप्रदेश।
3. वैराग्य सिंहासन : केदारनाथ के निकट, ऊखीमठ।
4. सूर्य सिंहासन : श्रीशैल।
5. ज्ञान सिंहासन : काशी, उत्तरप्रदेश।

इस दर्शन के सिद्धान्त श्रीपति विरचित ब्रह्मसूत्र के श्रीकरभाष्य तथा सिद्धान्त शिखामणि में विस्तारपूर्वक मिलते हैं। इनका दार्शनिक सिद्धान्त शक्तिविशिष्टाद्वैत कहलाता है।

(घ) काश्मीर शैवदर्शन (काश्मीर प्रदेश) :— काश्मीर शैवदर्शन का प्रारम्भ त्र्यम्बकादित्य से लेकर सोमानन्द पर्यन्त उपरोक्त विषय में स्पष्ट कर दिया गया है। तथापि काश्मीर शैवदर्शन में आचार्य सोमानन्द, अभिनवगुप्त एवं उत्पलदेव का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। इसमें शिव को ही जगत् का मूल कारण माना गया है। इसकी तत्त्वमीमांसा सर्वाधिक प्रबल मानी जाती है। इसमें छत्तीस तत्त्वों

को माना गया है। इसमें वर्णित विषयों का संकेतबिन्दु वर्णन इस प्रकार है।

1. शिवतत्त्व का वर्णन।
2. सदाशिव का वर्णन।
3. ईश्वर तत्त्व का वर्णन।
4. शक्तितत्त्व का वर्णन।
5. विद्या एवं शुद्ध विद्या का वर्णन।
6. आगम शास्त्रों का परिचय।
7. प्रकाश एवं विमर्श का वर्णन।
8. स्पन्दसिद्धान्त का वर्णन।
9. त्रिविध मलों का वर्णन।
10. चतुर्विध उपायों का वर्णन
11. पञ्चशक्तियों का वर्णन।
12. पञ्चक कञ्चुकों का वर्णन।
13. मन्त्रमात्रिका का वर्णन।
14. षड्गयोग की अवधारणा।
15. षडध्व धारणा का वर्णन।
16. सप्तविध प्रमाताओं की अवधारणा।
17. शक्तिपात का अवधारणा।
18. अनुत्तरतत्त्व की अवधारणा।
19. बन्धन एवं मुक्ति का वर्णन।
20. सृष्टिप्रक्रिया में छतीस तत्त्वों का वर्णन।

इस प्रकार से काश्मीर शैवदर्शन में विविध रहस्यात्मक विषयों का वर्णन किया गया है।

3. काश्मीर शैवदर्शन का नामकरण

काश्मीर शैवदर्शन को अनेक नामों से जाना जाता है। यद्यपि नाम से अभिहीत है कि काश्मीर प्रदेश का दर्शन। कतिपय नामकरणों का वर्णन इस प्रकार है।

(क) काश्मीर शैवदर्शन :– संगमादित्य ने काश्मीर प्रदेश में रहकर इस दर्शन का प्रचार प्रसार किया। अतः यह दर्शन पूर्णतः काश्मीर प्रदेश में प्रचारित और प्रसारित हुआ। अतः इसको काश्मीर शैवदर्शन का नाम दिया गया। इस दर्शन के अधिकतर दार्शनिक काश्मीर प्रदेश से ही हैं। देशविशेष के नाम पर इस दर्शन का नाम काश्मीर शैवदर्शन पड़ गया।[61]

(ख) आगमदर्शन :– शैवदर्शन का आधार आगम ग्रन्थ है। आगम ग्रन्थ भगवान् शिव के द्वारा चरित है। शिव को ही इनका सृष्टा एवं वक्ता माना गया है। आगम शब्द को परिभाषित करते हुए आचार्य वाचस्पति मिश्र ने कहा है–**"आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मात् अभ्युदयः–निः श्रेयसोपायाः स आगमः।"** अर्थात् अभ्युदय और निः श्रेयस के उपायों का प्रतिपादक शास्त्र आगम कहलाता है। प्रमुख आगम ग्रन्थों में मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम्, स्वच्छन्दतन्त्रम्, रुद्रायामलतन्त्रम्, नेत्रतन्त्रम्, स्वायम्भुवतन्त्रम्, विज्ञानभैरवम्, नैश्वासतन्त्रम्, शिवसूत्रम्, मृगेन्द्रागम आदि का परिगणन किया जाता है।[62] अतः इस दर्शन को आगम दर्शन भी कहा जाता है।

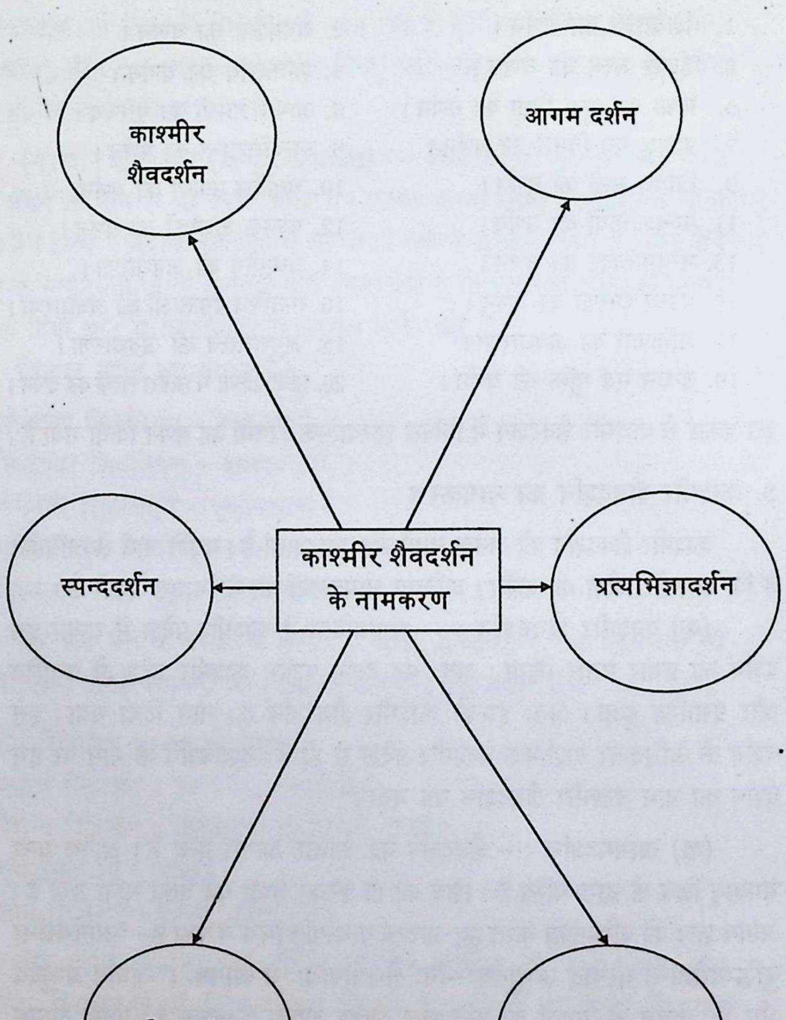
काश्मीर शैवदर्शन
आगम दर्शन
स्पन्ददर्शन
काश्मीर शैवदर्शन के नामकरण
प्रत्यभिज्ञादर्शन
त्रिकदर्शन
षडर्धदर्शन

(ग) स्पन्ददर्शन :– काश्मीर दर्शन की दार्शनिकीकरण में दो सम्प्रदायों का जन्म होता है। वे स्पन्द एवं प्रत्यभिज्ञा हैं। इन दोनों सम्प्रदायों का स्रोत त्रिक सम्प्रदाय माना जाता है। नवीं शताब्दी में वसुगुप्त को एक शिला उत्कीर्ण शिवसूत्रों की प्राप्ति हुई। वसुगुप्त स्वयं या उनके शिष्य कल्लट "स्पन्दकारिका" की रचना करते हैं। जिसे स्पन्दसूत्र भी कहा गया है। कल्लट की इस "स्पन्दकारिका" पर "स्पन्दसर्वस्व" नाम से वृत्ति लिखते हैं।

"स्पन्दकारिका" पर राजानक रामकण्ठ इस पर "विवरण" नाम से टीका लिखते हैं। इसके अतिरिक्त आचार्य क्षेमराज "स्पन्दनिर्णय" व "स्पन्दसन्दोह" नाम से दो टीकाएँ लिखते है। उत्पलवैष्णव इस पर स्पन्दप्रदीपिका नाम से टीका लिखते हैं। इस प्रकार अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि इस पर अनेकानेक ग्रन्थों का लेखन हुआ है। इस प्रकार से एक नये दर्शन स्पन्द का उदय होता है। अतः हम इसे स्पन्द दर्शन भी कहते हैं।

(घ) प्रत्यभिज्ञादर्शन :–प्रत्यभिज्ञा शब्द का अर्थ है–पहचान। स्वयं की करना। जीव जो वस्तुतः शिव का रूप है। संसार में आने के पश्चात् वह माया के पाँच कञ्चुकों से आवृत हो जाता है। वह स्वयं को भूल जाता है। स्वयं की पहचान करना ही प्रत्यभिज्ञा कहलाता है। "विमर्शिनी" में भी कहा गया है–**"प्रतीपमात्माभिमुख्येन ज्ञानं प्रकाशः प्रत्यभिज्ञा"**।[63]

प्रत्यभिज्ञादर्शन के विविध आचार्य

1. आचार्य सोमानन्द– शिवदृष्टि ग्रन्थ के लेखक ।
2. आचार्य उत्पलदेव– अधोलिखित ग्रन्थों के लेखक
    - ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका
    - ईश्वरप्रत्यभिज्ञावृति
    - ईश्वरप्रत्यभिज्ञाटीका
    - सिद्धित्रयी
    - शिवदृष्टिवृत्ति
    - शिवस्तोत्रावली

3. आचार्य अभिनवगुप्त– अधोलिखित ग्रन्थों के लेखक

- तन्त्रालोक
- तन्त्रसार
- मालिनीविजयवार्तिक
- परात्रिंशिकाविवरण
- शिवदृष्टि लोचन
- ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी
- परमार्थसार
- परमार्थचर्चा
- बोधपञ्चदशिका। इत्यादि।।

प्रत्यभिज्ञादर्शन का प्रथम आचार्य सोमानन्द को माना जाता है। इनके शिष्य उत्पलाचार्य, उत्पलाचार्य के शिष्य लक्ष्मणगुप्त थे। लक्ष्मणगुप्त के शिष्य आचार्य अभिनवगुप्त थे। काश्मीर शैवदर्शन में आचार्य अभिनवगुप्त का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। इनका सविस्तार से वर्णन अग्रिम अध्याय में किया जाएगा। सोमानन्द ने प्रत्यभिज्ञा सिद्धान्त पर विशेष बल दिया है। अतः इस दर्शन को प्रत्यभिज्ञादर्शन कहा जाता है।

(ङ) त्रिकदर्शन :– काश्मीर शैवदर्शन को त्रिक दर्शन के नाम से भी जाना जाता है। "तन्त्रालोक" में इसे त्रिकमत कहा गया है।[64] इसमें सिद्धान्ततन्त्र, नामकतन्त्र एवं मालिनीतन्त्र का परिगणन किया जाता है। तन्त्रत्रय की प्रधानता के कारण इसे त्रिकदर्शन कहा जाता है। इस दर्शन में भेद, अभेद और भेदाभेद की भी प्रधानता है।

त्रिक दर्शन का स्वरूप

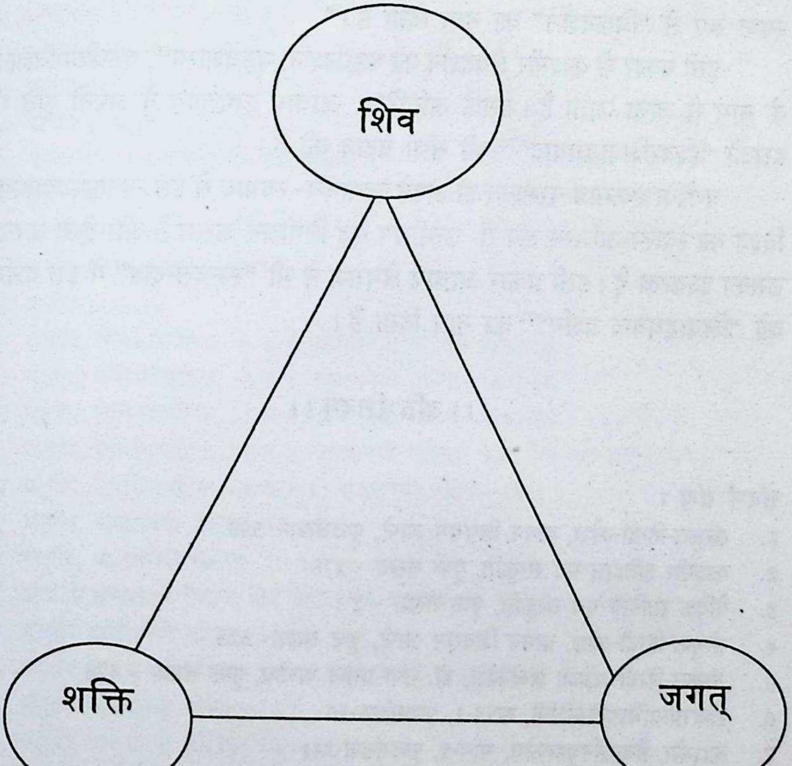

भेद	अभेद	भेदाभेद
सिद्धान्त	नामक	मालिनी

इसके अतिरिक्त इसमें शिव, शक्ति और जगत् का वर्णन भी स्वातन्त्र्यवाद में किया गया है। त्रिकदर्शन में पर अपर और परापर रूप तीन त्रिक माने गए हैं। अतैव इस दर्शन को त्रिकदर्शन कहा जाता है।

शिव और शक्ति का संघट्ट परत्रिक कहलाता है–**"शिवशक्तिसंघट्टात्मकं परत्रिकशब्दवाच्यम्"**।[65] अपरत्रिक के अन्तर्गत शिव और शक्ति तथा नर को

रखा जाता है—**"नरशक्तिशिवात्मकं त्रिकम्"**।[66] परापरत्रिक में परा, परापरा और अपरा देवी-त्रयी अधिष्ठात्रियाँ है।[67] इसके कारण ही यह दर्शन "त्रिकमत" कहलाता है। महारथमंजरीकार महेश्वरानन्द और जयरथ ने भी इस दर्शन का स्पष्ट रूप से "त्रिकदर्शन" का नाम दिया है।[68]

इसी प्रकार से काश्मीर शैवदर्शन को षड़र्धदर्शन, षड़र्धशास्त्र[69], षडर्धक्रमविज्ञान के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त आचार्य उत्पलदेव ने अपनी वृति में इसको "ईश्वरशिवाद्वयवाद"[70] की संज्ञा प्रदान की है।

क्योंकि एकमात्र परमेश्वर ही अपने स्वातन्त्र्य- स्वभाव से इस नानाप्रपञ्चात्मक विश्व का स्वात्म-अभिन्न रूप से उन्मीलन एवं निमीलन करता है और ऐसा करना उसका ईश्वरत्व है। इसी प्रकार आचार्य क्षेमराज ने भी "स्पन्दसन्दोह" में इस दर्शन को "शिवाद्वयवाद दर्शन"[71] का नाम दिया है।

।। इति शिवम् ।।

संदर्भ ग्रंथ :

1. संस्कृत-हिन्दी-कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठसंख्या- 590
2. काश्मीर इतिहास एवं संस्कृति, पृष्ठ संख्या - 178
3. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, पृष्ठ संख्या - 2
4. संस्कृत-हिन्दी-कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृष्ट संख्या- 523
5. संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश, डॉ. उमा प्रसाद पाण्डेय, पृष्ठ संख्या - 475
6. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, खण्ड-1, पृष्ठसंख्या-15
7. काश्मीर शैवदर्शनबृहत्कोष, भाग-2, पृष्ठसंख्या-341
8. विज्ञानभैरवविवृति, पृष्ठसंख्या - 7
9. शिवदृष्टि, आह्निक -7/122
10. कामिकागम में उदृत ।
11. क्षेमराज, विज्ञानभैरवविवृत्तिः पृष्ठसंख्या-7
12. सोमानन्द-आह्निक, शिवदृष्टि, 7/122, पृष्ठसंख्या-298
13. काश्मीर शैवदर्शन, पृष्ठसंख्या- 32
14. पूर्वोक्त
15. ऋग्वेद में वर्णित रुद्र सम्बन्धी सूक्त-1/114, 2/33, 7/46
16. ऋग्वेद-1/114/7
17. ऋग्वेद-1/114/8
18. ऋग्वेद-1/114/9
19. ऋग्वेद-1/114/10

20. ऋग्वेद-7/46/3- सस्त्रं ते स्वपिता भेषजा।
21. ऋग्वेद-2/33/2
22. ऋग्वेद-1/114/6, 2/33/6
23. ऋग्वेद-2/33/2 एवं 2/33/3
24. ऋग्वेद-7/46/3
25. ऋग्वेद-2/3/14
26. ऋग्वेद-1/114/6 एवं 2/33/1
27. ऋग्वेद-2/33/1-प्रजायेमाहि रुद्र प्रजाभिः।
28. ऋग्वेद-2/33/12
29. ऋग्वेद-2/33/10
30. ऋग्वेद-2/33/8 एवं 2/33/15
31. ऋग्वेद-2/33/10
32. यजुर्वेद, तैत्तिरीयसंहिता, -1/8/6, वाजसनेयी संहिता- 3/57-63
33. यजुर्वेद, तैत्तिरीयसंहिता, -4/5/1, वाजसनेयी संहिता- 16/1-66
34. यजुर्वेद, तैत्तिरीयसंहिता, -1/8/6, वाजसनेयी संहिता- 3/57-63
35. यजुर्वेद, तैत्तिरीयसंहिता, -1/8/6, वाजसनेयी संहिता- 3/61
36. यजुर्वेद, तैत्तिरीयसंहिता, -4/5/1/1, वाजसनेयी संहिता- 16/1
37. यजुर्वेद, वाजसनेयी संहिता- 16/5
38. यजुर्वेद, वाजसनेयी संहिता- 16/5
39. आर.जी.भण्डारकर-वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, पृष्टसंख्या- 118
40. यजुर्वेद वाजसनेयी संहिता- 16/5
41. यजुर्वेद वाजसनेयी संहिता- 16/30, नमोऽग्रयाय च प्रथमाय च ।
42. यजुर्वेद वाजसनेयी संहिता- 16/6
43. यजुर्वेद वाजसनेयी संहिता- 16/8
44. अथर्ववेद- 11/2/1
45. अथर्ववेद- 11/2/19
46. अथर्ववेद- 11/2/26
47. अथर्ववेद- 11/2/1, 2, 9, 11 आदि
48. अथर्ववेद- 11/2/9
49. अथर्ववेद- 11/2/3
50. अथर्ववेद- 11/2/12
51. अथर्ववेद- 11/2/1
52. मार्शन, जॉन, मोहन जोदडो एण्ड दि इन्नडस सिविलिजेशन में वर्णित ।
53. अनुभवनिवेदनस्तोत्र, अभिनवगुप्त, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, 1935
54. विज्ञानभैरवविवृति, पृष्ठसंख्या-7
55. के.सी.पाण्डेय, ऐन हिस्टॉरिकल एण्ड फिलॉसफीकल स्टडी, अभिनवगुप्त, पृष्ठसंख्या-180-183
56. सोमानन्द, शिवदृष्टि, पृष्ठसंख्या-7/107

57. सोमानन्द, शिवदृष्टि, पृष्ठसंख्या-7/121-122
58. सोमानन्द, शिवदृष्टि, आ.-7/114-1
59. त्रिकशास्त्ररहस्य प्रक्रिया, स्वामी लक्ष्मण जू द्वारा हस्तलिखित, पृ. 6 से 9
60. कश्मीर : इतिहास और संस्कृति, पृष्ठसंख्या-180
61. काश्मीर शैविज्म, पृष्ठसंख्या-1
62. काश्मीर शैविज्म, पृष्ठसंख्या-7
63. विमर्शिनी- 1/1/1
64. तन्त्रलोक, भाग-1, पृष्ठसंख्या-42
65. तन्त्रलोक में वर्णित ।
66. परात्रिंशिकाविवरण, प्रारम्भिक श्लोक-3
67. तन्त्रलोकविवेक, भाग-1, पृष्टसंख्या-35
68. (क) महार्थमंजरी परिमावृति, पृष्ठसंख्या-96,
    (ख) तन्त्रलोकविवेक.भाग-1, पृष्ठसंख्या-35
69. तन्त्रसार, पृष्ठसंख्या- 92
70. शिवदृष्टिवृति, आहनिक्-2, पृष्ठसंख्या - 36
71. स्पन्दसन्दोह, पृष्ठसंख्या - 20

द्वितीय अध्याय

आचार्य परम्परा एवं साहित्य

1.आचार्य परम्परा का परिचय

काश्मीर शैवदर्शन की आचार्य परम्परा अत्यन्त सूदीर्घ एवं विशाल है। इसमें आचार्यों की गणना करना कठिन कार्य है। काश्मीर शैवदर्शन में काश्मीर के सभी प्रखर पण्ड़ितों का योगदान है। अतः सभी के सहयोग एवं ज्ञानपुञ्जों से यह दर्शन पुष्पित एवं पल्लिवत हुआ। इसके के विषय में सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है। तथापि इसके आचार्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान आचार्य त्रयी का माना जाता है। इसमें आचार्य सोमानन्द, आचार्य उत्पलदेव एवं अभिनवगुप्त का परिगणन किया जाता है। यद्यपि काश्मीर शैवदर्शन को प्रचारित एवं प्रसारित करने में इन तीनों का सर्वाधिक योगदान माना जाता है। लेकिन काश्मीर शैवदर्शन के आचार्यो का परिचय करना अनिवार्य है। अतः शैवदर्शन के प्रमुख आचार्यो का संक्षिप्त रूप में वर्णन इस प्रकार है।

आचार्य परम्परा का परिचय

(क) प्रमुख शैवाचार्य

1. सन्त दुर्वासा	2. मठिकागुरु	3. संगमादित्य
4. वसुगुप्त	5. सोमानन्द	6. उत्पलदेव
7. अभिनवगुप्त	8. भट्टकल्लट	9. क्षेमराज
10. जयरथ	11. रामकण्ठ	12. भास्करकण्ठ
13. भट्टनारायण	14. योगराज	15. वरदराज एवं मधुराज
16. उत्पलवैष्णव	17. भट्ट प्रद्युमन	18. नागार्जुन
19. आचार्य अमृत वाग्मय।।		

(ख) अन्य काश्मीर शैवाचार्य

- श्रीकण्ठसूरी
- नारायण कण्ठ
- भट्‌टभास्कर
- शिवोपाध्याय
- आदिनाथ
- शिवानन्द नाथ
- पुण्यानन्द नाथ
- स्वतन्त्रानन्द नाथ
- चक्रपाणि नाथ
- साहिब कौल
- राजानक आनन्द
- रामेश्वर झा।।

इस प्रकार से काश्मीर शैवदर्शन के प्रमुख एवं अन्य शैवाचार्यों का विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

(क) प्रमुख शैवाचार्य

काश्मीर शैवदर्शन के आचार्यों वर्णन करना कठिन है। परन्तु कुछ आचार्य हैं जिनका नाम शैवदर्शन में पद पद पर लिया जाता है। अतः उन आचार्यों का वर्णन इस प्रकार है।

(क) काश्मीर शैवदर्शन के गुरु परम्परा एवं उनके ग्रंथ

1.	मुनि दुर्वासा	परशम्भुमहिम्नस्त्व, त्रिपुरामहिमन्स्तोत्रम्, ललिताम्बास्त्वरत्नम् ।
2.	आदिनाथ	अनुत्तरप्रकाशपञ्चदशिका
3.	शिवानन्दनाथ (अष्टमं शतकम्)	अनुपलब्ध
4.	वसुगुप्त (नवम शताब्दी आरम्भ)	शिवसूत्र को प्रकाशन करने वाले, भट्टकल्लट के गुरु
5.	भट्टनारायण (नवम शताब्दी आरम्भ)	स्तवचिन्तामणि
6.	भट्टकल्लट	स्पन्दकारिका, स्पन्दवृत्ति आदि

	(नवम शताब्दी के मध्य)	
7.	सोमानन्द (नवम शताब्दी)	शिवदृष्टि, परात्रिंशिकावृत्ति
8.	उत्पलदेव (नवम शताब्दी)	ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, ईश्वरप्रत्यभिज्ञावृत्ति, अजड़प्रमातृसिद्धि, सम्बन्धसिद्धि ईश्वरसिद्धिवृत्ति, सम्बन्धसिद्धिवृत्ति शिवस्तोत्रावली इत्यादि।
9.	रामकण्ठ (नवम शताब्दी)	स्पन्दविवृत्ति, भगवद्गीताभाष्यम् सर्वतोभद्रम्
10.	भट्टभास्कर (दशमं शतकम्)	शिवसूत्रवार्तिकम्
11.	वामनदत्त आचार्य (दशमं शतकम्)	संवित्प्रकाश, अद्वयसम्पत्तिवार्तिकम्
12.	भट्टदिवाकर (दशमं शतकम्)	विवेकाञ्जनम्, कक्ष्यास्तोत्रम् (अनुपलब्ध)
13.	उत्पलवैष्णव (दशवीं शताब्दी)	स्पन्दप्रदीपिका
14.	अभिनवगुप्त (950 से 1050 तक)	तन्त्रालोक, तन्त्रसार, परमार्थसार इत्यादि लगभग 50 ग्रन्थों का लेखन किया।
15.	क्षेमराज (ग्यारहवीं शताब्दी)	स्पन्दसंदोह, स्पन्दनिर्णय, प्रत्यभिज्ञाहृदयम्
16.	अभिनवगुप्त विशेष (ग्यारहवीं शताब्दी)	तन्त्रवटधानिका
17.	योगराज (ग्यारहवीं शताब्दी)	परमार्थसारविवृत्ति
18.	जयरथ (बारहवीं शताब्दी)	तन्त्रालोकविवेक
19.	शितिकण्ठ (तेरहवीं शताब्दी)	महानय प्रकाश,
20.	नागार्जुन (तेरहवीं शताब्दी)	परमार्चनत्रिंशिका , चित्तसंतोषत्रिंशिका

21.	महेश्वरानन्द (चौदहवीं शताब्दी)	महार्थमञ्जरीपरिमल
22.	लल्लेश्वरी (चौदहवीं शताब्दी)	लल्लवाक्यानि (काश्मीरी भाषा में लिखित)
23.	साहिबकौल (सत्रहवीं शताब्दी)	शिवजीवदशकम्, कल्पवृक्षप्रबन्ध, सचिंदानन्दकन्दली, देवीनामविलास
24.	शिवोपाध्याय (अठारवीं शताब्दी)	विज्ञान भैरव उद्योत, श्रीविद्यानिर्णय, शिवरात्रिनिर्णय
25.	भास्करकण्ठ (अठारवीं शताब्दी)	ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी पर भास्करी टीका

इसी प्रकार से बीसवीं शताब्दी में अमृतवाग्भव आचार्य ने आत्मविलास, विंशतिका शास्त्रम्, सिद्धमहारहस्यम्, वस्तुस्थितिप्रकाश का लेखन किया। इसी क्रम में बीसवीं शताब्दी में बलजिनाथ पण्डित ने स्वातन्त्र्यदर्पण का लेखन किया और रामेश्वर झा ने पूर्णताप्रत्यभिज्ञा ग्रन्थ का लेखन किया। इस साहित्य को भी विषय वस्तु के आधार पर विभाजित किया गया है। जिसमें मुख्यतः आगम, दर्शन और साधना परक रूप में बाँटा गया है। जिसका विवेचन इस प्रकार है।

ग्रन्थों का विभाजन

1.	**आगमग्रन्थ**	1. मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम् 2. स्वछन्दतन्त्रम् 3. नेत्रतन्त्रम् 4. विज्ञानभैरवम् 5. परात्रिंशिका 6. शिवसूत्रम्
2.	**दर्शन ग्रन्थ**	1. शिवदृष्टि (वृत्तिसंहिता) 2. सिद्धित्रयी (वृत्तिसहिता), 3. ईस्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, 4. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी, 5. मालिनीविजयवार्तिकम्, 6.महारथमञ्जरीपरिमलम्, 7. कल्पवृक्षप्रबन्ध 8. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा
3.	**साधना ग्रन्थ**	1. स्पन्दकारिका 2. स्पन्दवृत्ति 3. स्पन्दविवृत्ति 4. स्पन्दप्रदीपिका 5. स्पन्दनिर्णय 6. स्पन्दनिर्णय 7. स्पन्दसन्दोह 8. शिवसूत्रविमर्शिनी 9. शिवसूत्रवार्तिकम् (भास्करीयम्) शिवसूत्रवार्तिकम् (वरदराज) विरुपाक्षपञ्चाशिका

1.सन्त दुर्वासा - काश्मीर शैवदर्शन में सन्त दुर्वासा का नाम सहज ही लिया जाता है। शैवी विद्या का उदय करने का गौरव इनको ही प्राप्त है। इन्होंने भगवान् श्री कण्ठनाथ से शैवी विद्या का ज्ञान ग्रहण करके उसका प्रचार एवं प्रसार किया। इन्होंने अपने तपोबल से तीन मानसिक पुत्रों का जन्म दिया। जिनमें त्र्यम्बकनाथ, आमर्दकनाथ और श्रीनाथ का नाम परिगणन किया जाता है।[1]

इन्होंने तीनों को क्रमशः अद्वैतप्रधान भैरवशास्त्र, द्वैतप्रधान शिवशास्त्र और द्वैताद्वैत प्रधान रुद्रशास्त्रों का ज्ञान प्रदान किया।[2] इन्होंने धर्मार्थ कार्यों एवं सिद्धान्तों के ज्ञान हेतु गन्थों की भी रचना की थी। जिनका वर्णन इस प्रकार है।

कृतियाँ :1. परशम्भुमहिम्नःस्तवः - इस ग्रन्थ में स्पन्द के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। यह स्पन्दशास्त्र की सर्वाधिक पुरानी कृति है। यह कविता तेरह भागों में विभाजित है। इसमें धर्मार्थ पद्धति एवं स्पन्द सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।

2. त्रिपुरामहिम्नस्तोत्रम् : इसमें सन्त दुर्वासा द्वारा रचित रतीत्रिपुरा के स्तोत्र हैं। इसमें शाक्तदर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

3. ललितास्तवरत्नम् : सन्त दुर्वासा देवी के उपासक थे। इस ग्रन्थ में उन्होंने श्रीचक्र उपासना सहित देवी माता के स्तोत्रों का संग्रह किया गया है।

2. मठिकागुरु : इनको सन्त दुर्वासा का शिष्य माना जाता है। सन्त दुर्वासा ने त्र्यम्बकादित्य को शैवीविद्या का ज्ञान प्रदान किया। त्र्यम्बकादित्य ने शैवदर्शन के प्रचार और प्रसार के लिये शैव सम्प्रदाय की स्थापना की। ब्राह्मण कन्या से विवाह के पश्चात् संगमादित्य का जन्म हुआ। संगमादित्य भ्रमण करते हुए जब हिमालय ही तलहटी में आये तो यहीं निवास करने लग गये। इसी स्थान को त्र्यम्बकमठिका के नाम से जाना जाता है। काश्मीर में स्थापित होने के कारण त्र्यम्बकमठिका ने अपना क्षेत्र विस्तृत किया। इसको सम्भालने वाले गुरुओं को मठिकागुरु कहा गया तथा उनके वंशक्रम को मठिका गुरुवः के नाम से जाता है।

3. संगमादित्य : जब प्रथम त्र्यम्बकादित्य अपने शिष्य त्र्यम्बकादित्य द्वितीय को शैवदर्शन की विद्या का प्रचार प्रसार करने हेतु नियुक्त किया और सिद्धलोक चले गये।[3] तब सिद्धों की चौदहवीं पीढ़ी बीत गयी और पन्द्रहवीं पीढ़ी में फिर से त्र्यम्बकादित्य एक बार तीर्थ पर गये। वहाँ उन्होंने एक ब्राह्मण कन्या के साथ विवाह किया। त्र्यम्बकादित्य के पुत्र संगमादित्य का जन्म हुआ।[4]

संगमादित्य भी भ्रमण करते हुए काश्मीर आ गये तथा यहीं पर निवास करने लगे। इस प्रकार त्र्यम्बकमठिका कैलाश से आकर काश्मीर में बस गयी। इसी क्रम में संगमादित्य के बाद वर्षादित्य,अरुणादित्य एवं आनन्द की तीन पीढ़ीयाँ बीत गयी और बींसवी पीढ़ी में सोमानन्द का जन्म हुआ।[5]

4. वसुगुप्त : आचार्य वसुगुप्त का काश्मीर शैवदर्शन में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनको "शिवसूत्र" का उपस्थापक माना जाता है। शिवसूत्र के मुख्य रचनाकार भगवान् शिव है। किंवदन्ति के अनुसार वसुगुप्त को "शिवसूत्र" उत्कीर्ण होने स्वप्न में दिखाई दिया। उनकों ये सूत्र महादेव नामक पर्वत की शिला पर उत्कीर्ण मिले थे। "शिवसूत्रविमर्शिनी" के अनुसार इनकी संख्या पैतालीस है।

वर्तमान में भी यह शिला शंकरपोल महादेव गिरि से नाम प्रसिद्ध है। डॉ. के. सी पाण्डेय के अनुसार इनकी कृतियों का समय 825 ई. से 850 ई. तक माना जाता है।[6] इसके अतिरिक्त जे.सी.चटर्जी के मतानुसार इनका समय आठवी शताब्दी का अन्त एवं नवीं शताब्दी का मानना स्वीकार करते हैं।[7] कृति के रूप में इनकी केवल एक ही रचना मिलती है। उस पर भी काश्मीर शैवदार्शनिक मतभेद प्रकट करते हैं। इस कृति को "शिवसूत्र" के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त वसुगुप्त रचित भगवद्गीता की वास्वी टीका "स्पन्दामृत" तथा "सिद्धान्तचन्द्रिका" नामक ग्रन्थों का भी अनेक स्थानों पर वर्णन मिलता है। लेकिन सम्प्रति ये ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं।

5. सोमानन्द : काश्मीर शैव के प्रसिद्ध आचार्यों में सोमानन्द का स्थान अग्रणी माना जाता है। आचार्य त्रयी में इनको गिना गया है। सोमानन्द लोकोत्तर प्रतिभा धनी आचार्य थे। उन्होंने काश्मीर शैवदर्शन में "शिवदृष्टि" ग्रन्थ लिखकर एक नई क्रान्ति पैदा की। शैवदर्शन के सिद्धान्तों का इसमें विस्तार से वर्णन किया गया है। शिवदृष्टि श्लोकों में निबद्ध है। इन्होंने शिवाद्वयवाद के सिद्धान्त की प्रतिष्ठापना की थी। इनका समय नवी शताब्दी के आस पास माना जाता है।[8]

"शिवदृष्टि" के अन्तिम अध्याय के उपसंहार में इनकी जानकारी मिलती है। इनका सम्बन्ध देशवंश से था। शैवदर्शन की आचार्य परम्परा में इनकों आनन्द का पुत्र माना जाता है। "शिवदृष्टि" के अनुसार उनके परिवार का नाम उनकी स्वदेशी भाषा में तेरम्वा था। जे.सी चटर्जी वसुगुप्त को सोमानन्द का गुरु मानते हैं।[9] जबकि आनन्द आचार्य इनके गुरु और पिता दोनों माने जाते है।[10] इनकी प्रमुख कृतियों का वर्णन इस प्रकार है।

1. **शिवदृष्टि**—यह सात आह्निकों में विभक्त है। यह ग्रन्थ काश्मीर शैवदर्शन का सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ माना जाता है। इसमें लगभग सात सौ कारिकायों का समावेश है।
2. **विवृति**—यह ग्रन्थ सोमानन्द द्वारा ने "शिवदृष्टि" पर "विवृति" नामक व्याख्या को प्रस्तुत करता है।
3. **परात्रिंशिकाविवृति**—यह "परात्रिंशिका" पर लिखित विवृति ग्रन्थ है।

6. उत्पलदेव - आचार्य सोमानन्द के प्रधान शिष्य के रूप में उत्पलदेव का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध माना जाता है। उनकी माता का नाम वागीश्वरी था।[11] "ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका" में उत्पलदेव ने स्वयं को उदयाकर का पुत्र बतलाया है।

"जनस्यायत्नसिध्यर्थमुदयाकरसूनुना।
ईश्वरप्रत्यभिज्ञेयमुत्पलेनोपपादिता"।।[12]

अभिनवगुप्त ने भी इसी तथ्य का समर्थन किया है।[13] परन्तु "तन्त्रालोक" में अभिनवगुप्त ने उत्पलदेव को सोमानन्द का पुत्र कहा है।[14] डॉ. कान्ति चन्द्र पाण्डेय ने भी उत्पलदेव को सोमानन्द का ही पुत्र माना है।

वे आचार्य सोमनन्द के ही पुत्र थे ऐसा "ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका" में वर्णन किया गया है—श्री सोमानन्दस्यानुकम्पाः पुत्राः श्रीमदुत्पलदेवप्रभृतयः शिष्याः।[15] इस पर विवाद है। क्योंकि शिष्य को भी पुत्र मानकर उपदेश किया जाता है। इनके जन्मकाल के विषय में कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता है। इनके शिष्य रामकण्ठ द्वारा इनका समय काल 850 ई. के लगभग माना जा सकता है।

सर्वदर्शनकार माध्वाचार्य ने उत्पलदेव का समय 900 ई. माना है।[16] "काश्मीर शैविज्म" में भी प्रो. जगदीश चटर्जी ने शैवदर्शन की आचार्य परम्परा का उल्लेख किया गया। इसमें सोमानन्द को 850 ई. से 900 ई. के बीच प्रादुर्भाव होना स्वीकार किया है। जबकि उत्पलदेव का समय 900 ई. से 950 ई. तक के बीच स्वीकार किया है। काश्मीर शैवदर्शन में इनकी कृतियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जिनका सामान्य विवरण इस प्रकार है।

1. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका
2. ईश्वरप्रत्यभिज्ञावृत्ति
3. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाटीका
4. सिद्धित्रयी

5. शिवदृष्टिवृति

6. शिवस्तोत्रावली।

इनमें भी "ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका" सर्वाधिक प्रसिद्ध है। सिद्धित्रयी के अन्तर्गत "अजडप्रमातृसिद्धि" "ईश्वरसिद्धि" और "संबन्धसिद्धि" की गणना की जाती है। "ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका" पर विस्तार आगे चर्चा की गई है।

7. अभिनवगुप्त—काश्मीर शैवदर्शन की आचार्य परम्परा में आचार्य अभिवगुप्त को आचार्य त्रयी में गिना जाता है। शैवदर्शन में उनकों "महामहेश्वर" की उपाधि से विभुषित किया गया है। इनको प्रत्यभिज्ञादर्शन एवं त्रिक दर्शन का संस्थापक माना जाता है। कुल, क्रम और त्रिक सम्प्रदाय पर इनका प्रभुत्व था । "तन्त्रालोक" और "परात्रिंशिका" के उपसंहार में उनकी जानकारी प्राप्त होती है। इनके अनुसार ये कन्नौज के निवासी थे। इनके वंश के प्रारम्भ का पुरूष अत्रिगुप्त था।[17] काश्मीर के राजा ललितादित्य ने इनके वैदुष्य को देखकर इनको काश्मीर में रहने के लिये सहमत कर लिया था। "तन्त्रालोक" विवेक में स्पष्ट लिखा है—**"अस्य हि ग्रन्थ तः श्री नरसिंहगुप्तविमलाख्यौ पितरौ"**। अर्थात् इनकी पिता का नाम नरसिंहगुप्त एवं माता का नाम विमला था।[18] आचार्य अभिनवगुप्त ने "ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी" में अपनी रचना का काल लौकिक संवत् नब्बे बताया है। अतः इनका समय 1020 ई. निर्धारित किया गया है।

"तन्त्रालोक" में इनके निवास स्थान एवं घर की जानकरी उपलब्ध है—

"तस्मिन कुबेरपुर चारु सितांशु मौलि साम्मुख्य दर्शन विरूद्ध पवित्र भावे।
वैतस्तरोधसि निवाससममुष्य चक्रे द्विजस्य परि भूमि सम्पत्"।।

अर्थात् श्रीनगर में वितस्ता के तट पर इनका घर था।[19] आचार्य अभिनवगुप्त को ज्ञान-विज्ञान की अत्यन्त प्यास थी। अतः उन्होंने विविध विषयों का अलग-अलग गुरूओं से दीक्षाएँ लेकर ज्ञान ग्रहण किया। यथा-नरसिंहगुप्त (पिता)-व्याकरण, वैधनाथ-द्वैताद्वैत तन्त्रशास्त्र, लक्ष्मणगुप्त-प्रत्यभिज्ञा, भूतिराज से ब्रह्मविद्या आदि। इनके रचना और साहित्य को भी नवचेतना का रूप प्रदान किया। डॉ. के.सी. पाण्डेय ने अभिनवगुप्त की इकतालीस रचनाओं का उल्लेख किया है। इनकी रचनाओं का वर्णन इस प्रकार है—

- तन्त्रालोक—कुल, क्रम, तन्त्र एवं प्रत्यभिज्ञा का दार्शनिक विवेचन।
- तन्त्रासार—तन्त्रालोक की शिक्षाओं पर आधारित।

- मालनिविजयवार्तिक–त्रिक सम्प्रदाय का रहस्यात्मक ग्रन्थ।
- परात्रिंशिकाविवरण–मालिनी मातृका का विवेचन।
- ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी–दो विमर्शिनी, लघ्वी और बृहती नाम से प्रसिद्ध
- परमार्थसार–प्रारम्भिक शिक्षा हेतु उपयोगी।
- परमार्थचर्चा–शैवद्वैत के संदर्भ में लघुकार्य।
- गीतार्थसंग्रह–भगवद्गीता पर भाष्य ।।
- बोधपञ्चदशिका–शैवदर्शन पर किया गया महत्त्वपूर्ण कार्य।
- क्रमस्तोत्र।
- भैरवस्तोत्र।
- देहस्थ-देवता-चक्रस्तोत्र।
- अनुभवनिवेदन स्तोत्र।
- क्रमकेलि (अनुपलब्ध)।
- मालिनीतन्त्र पर पूर्व पञ्चिका (अनुपलब्ध)।
- अनुत्तराष्टिका।
- शिवदृष्ट्यलोचन।

इस प्रकार से काश्मीर शैवदर्शन में अभिनवगुप्त का सर्वोत्कृष्ठ योगदान माना जाता है।

8. भट्टकल्लट : भट्टकल्लट का नाम "स्पन्दशास्त्र" में बड़े गौरव के साथ लिया जाता है। "स्पन्शास्त्र" काश्मीर शैवदर्शन के साधना पक्ष से सम्बन्धित है। "स्पन्दकारिका" ही इस शास्त्र का आधार ग्रन्थ माना जाता है। इसके लेखक भट्टकल्लट हैं। इस ग्रन्थ को "स्पन्दसूत्र" भी कहा गया है। इसके विषय में दार्शनिकों में पर्याप्त मतभेद है। उत्पलवैष्णव[20] और भास्कर आचार्य[21] भट्टकल्लट को स्पन्दकारिका का कर्ता मानते हैं। जबकि आचार्य क्षेमराज "स्पन्दनिर्णय" में "स्पन्दकारिका" के रचनाकार वसुगुप्त माने जाते हैं। इसके रचनाकार वसुगुप्त ही हैं, ऐसा सर्वाधिक दार्शनिकों ने स्वीकार किया है। "स्पन्दकारिका" में शिवसूत्रों के दार्शनिक सिद्धान्तों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ पर अनेक टीका एवं वृतिग्रन्थ लिखे गए हैं।[1]

1. भट्टकल्लट –स्पन्दसर्वस्ववृति।
2. रामकण्ठ– स्पन्दविवृति।
3. उत्पलवैष्णव–स्पन्दप्रदीपिका।
4. क्षेमराज–स्पन्दसन्दोह, स्पन्दनिर्णय।।

भट्टकल्लट द्वारा लिखित ग्रन्थों का वर्णन इस प्रकार है।

शिवसूत्रवृति—वर्तमान में उपलब्ध।

स्पन्दसर्वस्व—स्पन्दकारिका पर टीका।

मधुवाहिनी—शिवसूत्र पर वृतिग्रन्थ, अनुपलब्ध।

तत्त्वार्थचिन्तामणि— "शिवसूत्र" के अन्तिम भाग पर वृति, अनुपलब्ध। इनके अतिरिक्त इन्होंने तत्त्वविचार एवं स्वस्वभावसम्बोधन की भी रचना की। लेकिन वर्तमान में ये ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं । इनके द्वारा रचित "स्पदकारिका" काश्मीर शैवदर्शन के साधनापक्ष की विस्तार से व्याख्या करती है। इसका आगे विस्तार से वर्णन किया गया है।

9. क्षेमराज : काश्मीर शैवदर्शन के प्रमुख आचार्यों में आचार्य क्षेमराज अग्रणी है। शैवदर्शन में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। "प्रत्यभिज्ञाहृदयम्" ग्रन्थ में इन्होंने स्वयं का स्पष्ट वर्णन किया है। इनका समय 975 ई. से 1050 ई. के बीच माना जाता है। इन्होंने "शिवसूत्रविमर्शिनी" नामक वैदुष्यपूर्ण ग्रन्थ की रचना की । इनकी कृतियों का वर्णन इस प्रकार है।

1. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्—सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। प्रत्यभिज्ञादर्शन पर आधारित।
2. स्वच्छन्दोद्योत—शिवशक्ति का स्वतन्त्र एवं विशद वर्णन पर आधारित।
3. नेत्रतन्त्रोद्योत—नेत्रतन्त्र पर टीक।
4. विज्ञानभैरवोद्योत—विज्ञानभैरव लघुभाग पर विवृति।
5. ध्वन्यालोक लोचनोद्योत—ध्वन्यालोकलोचन पर आधारित।
6. स्पन्दसन्दोह—स्पन्दकारिका की प्रथम कारिका पर आधारित।
7. स्पन्दनिर्णय—सम्पूर्ण स्पन्दकारिका पर टीका।
8. शिवसूत्रविमर्शिनी—शिवसूत्र पर विशद व्याख्यान का वर्णन।
9. स्तवचिन्तामणिविवृति।
10. शिवस्तोत्रावली टीका।
11. क्रमस्तोत्र टीका।
12. परमार्थसंग्रहविवृति।
13. पराप्रवेशिका।
14. साम्बपञ्चाशिका टीका।
15. तत्त्वसन्दोह।
16. भैरवानुकरणस्तोत्र।

17. स्पन्दनिलय ।
18. वर्ण उदय।
19. स्वच्छन्दनय।
20. महार्थमञ्जरी टीका।।
21. उत्पलस्तोत्रावली टीका।।

10. जयरथ :– तन्त्रालोक में इनकी सामान्य जानकारी उपलब्ध होती है। डॉ. के.सी.पाण्डेय के अनुसार जयरथ काश्मीर के शासक महाराजा जयसिंह के समकालीन थे।[22] जयसिंह का शासनकाल 1200 ई. माना गया है। जयसिंह ने ही जयरथ को "तन्त्रालोक" की टीका लिखने के लिए प्रेरित किया था। "तन्त्रालोक विवेक" नामक टीका इनकी प्रसिद्ध रचना है।

इनकी रचनाएँ निम्न है–

- अलङ्कार–विमर्शिनी अलङ्कार सर्वस्व की टीका।
- अलङ्कारोदाहरण–मौलिक रचना।
- वामकेश्वरी–मत विवरण।
- हर–चरितचिन्तामणि

11. रामकण्ठ :– रामकण्ठ उत्पलदेव के शिष्य और अवन्तिवर्मा के समसामयिक थे। इनका समय नवी शताब्दी माना जाता है। इनकी रचनाएँ इस प्रकार है।

- स्पन्दविवरण सारमात्रम्–स्पन्दकारिका पर टीका।
- सर्वतोभद्र–भगवद्गीता पर लिखी गई एक टीका।(अनुपलब्ध)
- मातङ्गतन्त्र की टीका। (अनुपलब्ध)

12. भास्करकण्ठ :– इनके पिता का नाम अवतारकण्ठ और पितामह का नाम वैदूर्यकण्ठ था। इनका पुत्र जगन्नाथ था। इनके गुरु कौल नरोत्तम थे।[23] इनका समय आठरहवीं शताब्दी था। इन्होंने "ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी" पर टीका लिखी। यह भास्करी के नाम से प्रसिद्ध है। यह अत्यन्त प्रसिद्ध कृति मानी जाती है। इनके तीन कार्य महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

1. लल्लावाक् का संस्कृत में अनुवाद।
2. योगवशिष्ठ की टीका।
3. हर्षेश्वरस्तव की रचना।

13. भट्ट नारायण :– यह नारायण कल्लट के समकालीन थे। इनका समय नवी शताब्दी है। इन्होंने “स्तवचिन्तामणि” नामक दार्शनिक कविता लिखी। इसमें शिव की प्रशंसा की गई है।

14. योगराज :– योगराज आचार्य क्षेमरज के शिष्य थे। इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी है। इन्होंने “परमार्थसार” पर “परमार्थसार पर टीका” लिखी है। यह काश्मीर शैवदर्शन के सिद्धान्तों का दार्शिनिक विवेचन करने वाला प्रसिद्ध हैं। यह रचना “अद्वैतवाद” की स्थापना करती है।[24]

15. महेश्वरानन्द :– यह महाराष्ट्र प्रदेश का पुत्र माना जाता है।[25] इन्होंने त्रिक दर्शन पर आधारित “महार्थमञ्जरी” की रचना की। इसमें सत्तर प्राकृत गाथाएँ हैं। इसमें प्रत्यभिज्ञादर्शन के आत्मज्ञान के समान ही दार्शनिक विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ पर “महार्थमञ्जरीपरिमल” नामक सरल टीका उपलब्ध होती है। इसमें काश्मीर शैवदर्शन के इतिहास की सूचनाओं का वर्णन किया गया है।

16. वरदराज एवं मधुराज :– वरदराज शैवमतानुयायी कृष्णदास मधुराज के सबसे छोटे पुत्र माने जाते हैं।[26] इनका समय बारहवीं शताब्दी का प्रारम्भ था। इनकी रचना “शिवसूत्रवार्तिक” है। यह एक प्रसिद्ध रचना मानी जाती है।

17. उत्पलवैष्णव :–उत्पलवैष्णव को त्रिविक्रम का पुत्र माना जाता है। “स्पन्दकारिका” में इनका वर्णन मिलता है। इनका समय दशवीं शताब्दी माना जाता है। इन्होंने “स्पन्दप्रदीपिका” की रचना की। यह “स्पन्दकारिका” पर वैदुष्यपुर्ण टीका है।

18. भट्ट प्रद्युमन :–ये भट्टकल्लट के चचेरे भी और उनके शिष्य थे। इन्होंने “तत्त्वगर्भस्तोत्र” दार्शनिक कृति की रचना की। ये एक कवि के रूप में प्रसिद्ध थे।

19. नागार्जुन (शैव) :–यह हिमाचल प्रदेश के ज्वालामुखी में रहने वाले प्रसिद्ध सन्त थे। इन्होंने “चित्तसन्तोषत्रिंशिका” एवं “परमार्चनत्रिंशिका” की रचना की। इनका समय तेरहवी शतावदी माना जाता है।

20. आचार्य अमृत वाग्मय :–यह महाराष्ट्र के ब्राह्मण परिवार के शैवाचार्य माने जाते हैं। इनकी समय बीसवीं शताब्दी है। पिता के देहान्त के बाद इनको छात्रवृति मिली और इन्होंने वाराणसी में प्रकाशक के पास प्रूफ रीड़र का कार्य किया। क्वीन्स कालेज ने प्रधानाचार्य ने इनको अपने पुस्तकालय में शोधछात्र

के रूप में नियुक्त किया। सन 1982 में इनका दिल्ली में देहान्त हो गया। इनकी कृतियों का वर्णन इस प्रकार है–

- आत्मविलाससुन्दरी – आत्मविलास की कारिकाओं पर आधारित।
- विमर्शतिकाशास्त्र – शैवदर्शन के मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित।
- सिद्धमहारस्य – शाम्भयोग का विस्तृत वर्णन।
- परमशिवस्तोत्र – छत्तीस तत्त्वों के शिव की प्रंशसा।
- मन्दाक्रान्तास्तोत्र – देवी माता की दार्शनिक वृति।
- महानुभवशक्तिशक्तिस्तोत्र – ईश्वर की पाँच मौलिक शक्तियों का वर्णन।

इस प्रकार से काश्मीर शैवदर्शन के प्रमुख आचार्यों का वर्णन स्पष्ट होता है।

(ख) अन्य काश्मीर शैवाचार्य

काश्मीर शैवदर्शन में अनेक आचार्यों का योगदान है। अधोलिखित आचार्यों का भी नाम काश्मीर शैवदर्शन में परिगणन किया जाता है। जिनका अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

1. श्रीकण्ठसूरी– इन्होंने "रत्नत्रय" नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें इन्होंने स्वयं को रामकण्ठ का शिष्य बतलाया है। अतः सम्भवतः इनका समय 1050 से 1075 होना अधिक उपयुक्त लगता है।

2. नारायण कण्ठ– इनका समय ग्याहरवीं शताब्दी माना जाता है। इनके पिता का नाम विद्याकण्ठ और पितामह का नाम शङ्कर था। इनकी "मृगेन्द्रतन्त्र" पर टीका है। यह टीका "मृगेन्द्रवृति" के नाम से प्रसिद्ध है।

3. भट्टभास्कर–भट्टभास्कर वसुगुप्त के शिष्य थे। इनके उपदेशक भट्ट श्रीकण्ठ थे। इनका समय दशवी शती पूर्वाद्ध माना जाता है। इनकी रचना "शिवसूत्रवार्तिक" मानी जाती है। इसमें शिवसूत्रों की विशद व्याख्या की गयी है। "शिवसूत्र" के अध्यायों को तीन नाम प्रदान किए गए हैं–

1. चित्स्वरूपनिरूपणम्
2. सहजविद्योदय निरूपणम्
3. विभूतिस्पन्द।

4. शिवोपाध्याय–शिवोपाध्याय का वास्तविक नाम शिव था। ये उपाध्याय जाति के थे। इनका "विज्ञानभैरव विवृति" में वर्णन मिलता है। उन्होंने स्वयं को गोविन्दगुरु और सुन्दरकण्ठ का शिष्य बतलाया है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों का

वर्णन इस प्रकार है। रचनाएँ–

1. विज्ञानभैरव पर टीका
2. श्रीविद्या
3. गायत्रीभाष्य
4. शिवरात्रि निर्णय।

5. आदिनाथ– काश्मीर शैवदर्शन में इनकी जानकारी उपलब्ध नहीं है। तथापि इनका नाम नाथ कौल सम्प्रदाय को दर्शाता है। इन्होंने "अनुत्तरप्रकाशपञ्चाशिका" ग्रन्थ का लेखन किया है। इस ग्रन्थ में तत्त्व, मातृका, शक्ति एवं उपायों का वर्णन किया गया है।

6. शिवानन्द नाथ–लगभग आठवी शताब्दी में उत्तरपीठ में शिवानन्द नाथ नामक सन्त सिद्ध प्रसिद्ध हुए। ये शाक्तोपाय ज्ञाता माने जाते थे। काश्मीर में काली उपासना के संस्थापक रूप में प्रसिद्ध है। इनकी मात्र दो कारिकाएँ "तन्त्रालोक" पर जयरथ की टीका में उपलब्ध हैं।

7. पुण्यानन्द नाथ–पुन्यानन्द के विषय में जानकारी का अभाव है। "कामकलाविलास" नामक ग्रन्थ के ये लेखक माने जाते हैं। इसमें उपासना सम्बन्धी "परमार्थ विद्या" का वर्णनं किया गया है।

8. अमृतानन्द नाथ–जानकारी अनुपलब्ध। टीका-कामकलाविलास पर टीका। चिद्विलास नामक ग्रन्थ की रचना।

9. स्वतन्त्रानन्द नाथ–शैवदर्शन की साधना सम्बन्धी "मातृकाचक्रविवेक" की रचना।

10. वातुलनाथ–"वातुलनाथसूत्र" के लेखक ।

11. चक्रपाणि नाथ–"भावोपहार" नामक स्तोत्र ग्रन्थ की रचना की।

12. साहिब कौल–काश्मीर शैवदर्शन में इनका वर्णन उपलब्ध होता है। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी माना जाता है। इनके पिता का नाम श्रीकृष्ण कौल और माता का नाम बुद्धि था।[27] इनकी तीन कृतियाँ प्रसिद्ध हैं–

1. देवीनामविलास – रुद्रायामलतन्त्र पर आधारित।
2. शिवजीवदशक – स्वात्मप्रकाश की गीतात्मक अभिव्यक्ति।
3. कल्पवृक्ष – प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ। इसके अतिरिक्त इन्होंने

शिवशक्तिविलास, "गुरुवृतचिन्तामणि" आदि।

13. राजानक आनन्द—"षट्त्रिंशतत्त्वसन्दोह" के लेखक। यह प्रसिद्ध ग्रन्थ है। वर्तमान में उपलब्ध है।

14. रामेश्वर झा— वाराणसी के प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान्। "पूर्णताप्रत्यभिज्ञा" ग्रन्थ के लेखक। यह ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद के साथ उपलब्ध है।

15. कालिदास श्री वास्तव—"चिग्गगनचन्द्रिका" के लेखक।

2. काश्मीर दर्शन के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय

काश्मीर शैवदर्शन का साहित्य अत्यन्त विशाल एवं सूदीर्घ माना जाता है। उनके सभी ग्रन्थों का विस्तार से वर्णन करना कठिन है। अतः प्रमुख ग्रन्थों का सामान्य परिचय यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

1. शिवसूत्रम् :—शिवसूत्रम् काश्मीर शैवदर्शन का प्रसिद्ध आगम ग्रन्थ माना जाता है। वसुगुप्त को इसका रचनाकार मानते हैं। लेकिन अन्य शैवाचार्यों के अनुसार शिवसूत्र की रचना भगवान शिव के द्वारा हुई थी। वसुगुप्त को स्वप्न में आदेश मिला शिला पर सूत्र उत्कीर्ण है। इन सूत्रों का प्रचार प्रसार करे। उन्होंने इनका लेखन कार्य किया तथा शक्तिपात् के अनुसार इनकों समाज के सामने प्रस्तुत किया।। "शिवसूत्रविमर्शिनी" के अनुसार इनकी संख्या पैतालीस है। वर्तमान में भी यह शिला शंकरपोल महादेव गिरि नाम प्रसिद्ध है।

डॉ.के.सी पाण्डेय के अनुसार इनकी कृतियों का समय 825 ई. से 850 ई. तक माना जाता है।[28] इसके अतिरिक्त जे.सी.चटर्जी के मतानुसार वसुगुप्त समय आठवी शताब्दी का अन्त एवं नवीं शताब्दी का मानना स्वीकार करते हैं।[29]

कृति के रूप में इनकी केवल एक ही रचना मिलती है। उस पर भी काश्मीर शैवदार्शनिक मतभेद प्रकट करते हैं। इस कृति को शिवसूत्र के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त वसुगुप्त रचित भगवद्गीता की "वास्वी टीका", "स्पन्दामृत" तथा "सिद्धान्तचन्द्रिका" नामक ग्रन्थों का भी अनेक स्थानों पर वर्णन मिलता है। लेकिन सम्प्रति ये ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं।

शिवसूत्रों पर तीन टीकाएँ उपलब्ध हैं—

1. शिवसूत्रवृति—अज्ञातकर्तृक ।
2. शिवसुत्रवार्तिक— भट्टभास्कर।
3. शिवसूत्रविमर्शिनी—राजानक क्षेमराज।

2. मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम् :—आगम ग्रन्थों में "मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम्" का नाम अग्रणी है। इस के दो नाम प्रशिद्ध है—पूर्व मालिनी, उत्तरमालिनी। इसमें वर्णो की स्वभाविक अभिव्यक्ति का वर्णन किया गया है। संस्कृत वर्णमाला शुद्ध वैज्ञानिक उदयक्रम पूर्वमालिनी है। ज़ब वर्णों के स्वभाविक और वैज्ञानिक उदय क्रम को अस्तव्यस्तरूपेण लिया जाता है, तब वह उत्तरमालिनी कहलाता है। इसमें योग एवं अन्य तन्त्र सम्बन्धी क्रियायों का वर्णन किया गया है। वर्तमान में उपलब्ध "मालिनीविजयोरतन्त्र" "सिद्धयोगीतन्त्र" का उत्तर भाग प्रतीत होता है।[30] इसमें वर्णित विषय इस प्रकार हैं। जैसे

- शिव द्वारा आठ विज्ञानकेवलों की सृष्टि।
- सप्तविध प्रमातृ सृष्टि का वर्णन।
- माया तत्त्व का विस्तृत वर्णन ।
- माया के कञ्चूकों का वर्णन ।
- रुद्रदेवता एवं रुद्रशक्ति का वर्णन।
- बीजरूप शिव का विस्तृत विवेचन।
- वेदादि वाङ्मय का प्रवर्तन ।
- शिवदीक्षा से मुक्ति।
- बीजरूप शिव एवं योनी रूप शक्ति का वर्णन ।
- षोडश बीजों के वाचक षोडश रुद्रों का वर्णन ।
- साधकेन्द्रों केन्द्रों की सिद्धि के आधार का वर्णन ।
- विद्या और मन्त्रों के आधार का वर्णन ।
- भुवनाध्वा का वर्णन ।
- शिवबिन्दु चिन्तन का विवेचन ।
- अष्टमूर्ति शिव का वर्णन ।
- मन्त्रसिद्धि के आचरण एवं जप, तपर्ण इत्यादि का विवेचन ।
- शक्तिपात् से शिष्य में आनन्द का विवेचन ।
- शिष्य के योगाभ्यास का वर्णन ।
- पञ्चतनमात्रओं का वर्णन ।
- इन्द्रियों का विस्तार स्वरूप विवेचन ।
- ब्रह्मरन्ध्रप्रवेश का वर्णन ।

- 72 हजार नाड़ीचक्र वर्णन ।
- वाक् सिद्धि का स्वरूप ।
- द्वादश शक्तिमन्तों का वर्णन ।
- सद्य प्रत्यकारक प्रयोग का विवेचन ।
- साधना के स्वरूप में सुफल सिद्धि का विवेचन ।
- समयगत साधना से फलसिद्धि विवेचन ।
- एक लाख जप उसका विशेष फल विवेचन ।
- साक्षात् शिव द्वारा योगरस्थ साधकों को मालिनी ज्ञान का विवेचन इत्यादि।।

इस प्रकार से मालिनी में विविध विषयों पर गहनता से चर्चा की गई है।

3. रुद्रयामलतन्त्रम् :—यह तन्त्र ग्रन्थ चौसठ आगमों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें विज्ञानभैरव, परात्रिंशिका और भवानी सहस्रनाम आदि खण्डभाग पूर्व से ही वर्णित हैं। ये सभी इसके ही खण्ड भाग माने जाते हैं। वर्तमान में इस तन्त्र ग्रन्थ पर डॉ. सुधाकर मालवीय की हिन्दी व्यख्या उपलब्ध है। अनेकानेक रहस्यात्मक विषयों का उल्लेख किया गया है।

सर्वाधिक रहस्यात्मक एवं महत्त्वपूर्ण विषय :—

- पञ्चमकार साधना रहस्य का विवेचन।
- योगतत्त्व विमर्श विस्तार पूर्वक।
- परमशिव और पराशक्ति का वर्णन।
- सृष्टिप्रक्रिया का आगम सम्मत विस्तृत विवेचन।
- त्रिविध भावों का वर्णन।
- साधना और उपासना पद्धति का वर्णन।
- षट् चक्रविवेचन और उनकी साधना की समीक्षा।
- कुण्ड़लिनी साधना या जागरण का वर्णन।
- साधना के विविध आयामों की समीक्षा।।
- गुरु एवं शिष्य के लक्षण का विवेचन ।
- दीक्षा के स्वरूप का विस्तारपूर्वक विवेचन ।
- मन्त्रविन्यास का संक्षिप्त विवेचन ।

- कुमारीपूजा विधि विवेचन।
- दिव्य-वीर-पशुभाव विवेचन ।
- योगतत्त्व विमर्श में अष्टांग योग का विस्तारपूर्वक विवेचन ।
- तत्त्वमीमांसा का विस्तारपूर्वक स्वरूप विवेचन ।
- योगसाधना का विस्तारपूर्वक वर्णन ।
- सृष्टिप्रक्रिया का विवेचन ।
- आत्मा, बन्धन एवं मोक्ष का वर्णन ।
- साधना एवं उपासना की फलसिद्धि का विवेचन ।
- शारीरिक षट् चक्र विवेचन ।
- कुण्ड़लिनी जागरण का विस्तारपूर्वक विवेचन ।
- श्रीकृष्ण साधना विवेचन ।
- रुद्राणीस्तोत्र का विवेचन ।
- सदाशिव स्तोत्र विवेचन ।
- महामृत्युञ्जय स्तोत्र का विवेचन ।
- अनाहत पद्मचक्र विन्यास का वर्णन ।
- काकिनी-शाकिनी विद्या विवेचन ।
- शाकिनी सदाशिव स्तवन का वर्णन ।
- बटुकनाथ पूजा विधान वर्णन ।
- सदाशिवकवच विवेचन ।
- हाकिनीस्तोत्र का विवेचन ।
- शतयोनी का विस्तार वर्णन ।
- श्रीकण्ठविन्यास का विवेचन ।
- परनाथ सहस्रनाम का विवेचन ।
- वाराणासीपीठ का वर्णन । इत्यादि।।

इस प्रकार से रुद्रयामतन्त्र में विभिन्न प्रकार विषयों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

4. स्वच्छन्दतन्त्रम् :— इस तन्त्र को अद्वैत तन्त्रों का प्रधान आगम ग्रन्थ कहा गया है।[31] शैवीविद्या का यह प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसमें उपासना और कर्मकाण्ड का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसका स्वच्छन्द नाम स्वभाव

भैरव का पर्याय है। इसमें भी भैरव और देवी की बीच हुए संवाद का वर्णन है। इसमें पन्द्रह पटल हैं।

पौराणिक आख्यानों में भी इसका उल्लेख मिलता है। इसकी विषयवस्तु में दक्ष, प्रजापति, स्वायम्भुव तथा मनु आदि के आख्यानों का वर्णन किया गया है। इसमें विविध विषयों का उल्लेख किया गया है।

- भैरवाष्टक का वर्णन ।
- अर्चना पद्धति का वर्णन।
- भैरवा साधना का न्यास क्रम विवेचन।
- दीक्षा अभिषेक का वर्णन।
- नीर्वाण दीक्षा का वर्णन।
- तत्त्वदीक्षा का वर्णन।
- पञ्चप्रणवाधिकार का विवेचन।
- कालाधिकार का विवेचन।
- अंशाधिकार का विवेचन।
- भुवनाध्वाधिकार का विवेचन।
- विविध ब्रह्मण्धें का वर्णन।
- सृष्टिसंहार का विवेचन।
- मृत्युञ्जय मन्त्र का स्वरूप।
- नाद और बिन्दु का विवेचन।
- ईश्वर के पाँच मुखों का ध्यान।
- अध्यात्मिक काल सहित प्रधान नादियों का विवेचन।
- नरकों का स्वरूप और उसके प्रकारों का वर्णन ।
- मूल बीजाक्षर एवं दश लाख जप का फल का वर्णन।
- मुद्रा का स्वरूप एवं मुद्राओं का स्वरूप विवेचन ।
- भैरव की आज्ञा से सिद्धि प्राप्ति का विस्तृत विवेचन।

इस प्रकार से स्वच्छन्द तन्त्र में इन विषयों का विस्तार से विवेचन किया गया है।

5. नेत्रतन्त्रम् :– काश्मीर शैव साधना का सर्वाधिक प्रसिद्ध आगम ग्रन्थ माना जाता है। इसमें भैरव भैरवी संवाद का विशद वर्णन मिलता है। इसको अद्वैत तन्त्रों के साथ द्वैत और द्वैताद्वैत तन्त्रों की सिद्धि देने वाला बताया गया है।[32]

साधक को मुक्ति दिलाने और विकट भय से त्राण करने के लिये तह तन्त्र "नेत्रतन्त्रम्" के नाम से अभिहित है।[33] त्रिकशास्त्रों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। इसके विवेचित विषयों का वर्णन यहाँ प्रस्तुत है।

- इच्छा-ज्ञान क्रिया शक्तियों का विस्तृत विवेचन।
- साधना में प्रणव ऊँकार का विवेचन।
- सदाशिव के विविध रूपों का वर्णन।
- मोक्ष प्रदायिनी दीक्षा विधि का विवेचन।
- भगवान् मृत्यञ्जय की आराधना का विवेचन।
- शिव के साभास और निराभास का वर्णन।
- सृष्टिप्रक्रिया में यामल स्वरूप का विवेचन।
- मृत्यञ्जय मन्त्रराज के विशालतम स्वरूप का वर्णन।
- नादकलाओं का सद्योजात से लेकर ईशानपर्यन्त पञ्चवत्रकलाओं का विवेचन।
- सदाशिव की महिमा का वर्णन ।
- अभिषेकविधि का विवेचन ।
- भैरव उपासना वर्णन ।
- भगवान तुम्बूर स्वरूप की आराधना का वर्णन ।
- लक्ष्मी नारायण के स्वरूप का विवेचन ।
- चक्रराज की लेखन एवं पूजन विधि का वर्णन ।
- मन्त्रसिद्धि का स्पष्ट विवेचन ।
- योगिनियाँ आदि से मनुष्य की रक्षा के उपाय का वर्णन ।
- योगिनियाँ आदि से पशु की रक्षा के उपाय का वर्णन ।
- शिवात्मक मन्त्रों पर विस्तारपूर्वक वर्णन ।
- महामृत्युञ्जय महाराज की सर्वोत्कृष्टता का वर्णन। इत्यादि।।

इस प्रकार से नेत्रतन्त्र में विविध ज्ञानविषयों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

6. परात्रिंशिकाविवरण :– आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा रचित यह ग्रन्थ आगमिक ग्रन्थ पर टीका है। इसमें मातृका और मालिनी पर प्रकाश ड़ाला गया है। मन्त्रों के द्वारा कैसे सृष्टि में विस्तार होता है। मालिनी के सभी वर्णो को सारगर्भित

रूप में समझाया गया है। काश्मीर शैवदर्शन के अन्य दार्शनिक विषयों का इसमें वर्णन मिलता है।

7. विज्ञानभैरव :– यह ग्रन्थ भैरव संवाद पर आधारित है । वर्तमान में इस पर हिन्दी सहित टीकाएँ उपलब्ध हैं। इसमें भैरव और देवी का संवाद वर्णित है। यह "रुद्रयामलतन्त्र" का सार है। वह सभी प्रभेदों का हृदय कहा गया है–

"रूद्रयामलतन्त्रस्य सारमद्यावधारितम्।
सर्वशक्तिप्रभेदानां हृदयं ज्ञातमद्य च"।।[34]

यह ग्रन्थ एक सौ एकसठ छन्दों में रचित है। इस ग्रन्थ के प्रमुख आचार्य क्षेमराज एवं शिवोपाध्य की "विवृति" एवं भट्ट आनन्द की "विज्ञानकौमुदी" टीका उपलब्ध है। विज्ञानभैरव में तन्त्रशास्त्र के विविध विषयों का विवेचन किया गया है। जैसे–

- अकारादि स्वरों द्वारा द्वादश चक्रों का वर्णन।
- चिदाकाशात्मिका देवी का वर्णन।
- भक्ति का स्वरूप और उसका विवेचन।
- भू चक्र द्वारा बिन्दु में विलीन होना।
- नाद शब्द ब्रह्म भावना का विवेचन।
- सम्पूर्ण जगत् का स्व स्व कणों में लीन होना।
- प्राणायाम विषय का विस्तारपूर्वक विवेचन।
- अनुत्तरत्त्व का बिन्दु और विसर्ग सहित विवेचन।
- माया, कला और उसके विविध स्वरूपों का वर्णन।
- प्रत्यभिज्ञा का द्विविध स्वरूप।
- सप्तविध समाधि का वर्णन।
- भैरव के स्वरूप का विवेचन।
- प्रणव एवं नाद चिन्तन द्वारा शून्य का साक्षात्कार।
- बिन्दु, नाद और नादान्त के अनन्तर शून्योच्चारण का वर्णन।
- पूजा और होम आदि का वर्णन।।

8. स्पन्दकारिका :–यह ग्रन्थ काश्मीर शैवदर्शन के साधना पक्ष पर आधारित है। इसकी रचना के संदर्भ में मतभेद हैं। "स्पन्दशास्त्र" का यह मूलभूत ग्रन्थ माना जाता है। इसे "स्पन्दसूत्र" भी कहा जाता है। इसके विषय में

दार्शनिकों में पर्याप्त मतभेद है। उत्पलवैष्णव[35] और भास्कर आचार्य भट्टकल्लट[36] को "स्पन्दकारिका" का कर्ता मानते हैं। जबकि आचार्य क्षेमराज "स्पन्दनिर्णय"" में "स्पन्दकारिका" के रचनाकार वसुगुप्त माने जाते हैं। इसके रचनाकार वसुगुप्त ही हैं, ऐसा सर्वाधिक दार्शनिकों ने स्वीकार किया है। "स्पन्दकारिका" में शिवसूत्रों के दार्शनिक सिद्धान्तों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसमें वर्णित विषय इस प्रकार हैं।

- स्पन्द सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन।
- बिन्दु और नाद के स्वरूप का विवेचन।
- शैवी स्वातान्त्र्य शक्ति का प्रतिपादन।
- पशुप्रमाता एवं शिवत्व की व्यापकता।
- उन्मेष का स्वरूप एवं उसकी शक्तियाँ।
- यौगिक सिद्धियों में उन्मेष का अनुशीलन।
- मन्त्रों के चिदाकाश में शिव की शिवात्मकता।
- स्पन्दस्वरूप का विवेचन ।
- शजविद्योदय स्पन्द का विवेचन ।
- विभूति स्पन्द का वर्णन ।
- स्पन्दसाधना पद्धति विवेचन ।
- चतुर्विध उपायों का विवेचन ।
- विमर्श एवं संवित् शक्ति का विवेचन ।
- सर्वशक्तिवाद का विवेचन ।
- उदयवाद एवं क्रीड़ावाद का वर्णन।
- इच्छासृष्टिवाद एवं स्वातन्त्र्यवाद का विवेचन ।
- विमर्शवाद एवं अद्वैतवाद का विवेचन ।
- स्वस्वरूपवाद का विवेचन ।
- अनुग्रहवाद का विवेचन ।
- विश्वात्मवाद एवं सर्वात्मवाद का विवेचन । इत्यादि।।

स्पन्दकारिका की भूमिका उपरोक्त विषयों को केन्द्र में रखकर स्पन्दसिद्धान्त का विवेचन किया गया है।

स्पन्दकारिका ग्रन्थ पर अनेक टीका एवं वृतिग्रन्थ लिखे गए हैं।

1. भट्टकल्लट– स्पन्दसर्वस्ववृति। 2. रामकण्ठ– स्पन्दविवृति।
3. उत्पलवैष्णव– स्पन्दप्रदीपिका। 4. क्षेमराज– स्पन्दसन्दोह, स्पन्दनिर्णय।।

9. शिवदृष्टि :– सोमानन्द द्वारा विरचित "शिवदृष्टि" कश्मीर शैवदर्शन का प्रथम दार्शनिक ग्रन्थ है। इसमें शैवदर्शन के मूल सिद्धान्तों का सृष्टि विवेचन सहित वर्णन किया गया है। इसकी व्याख्या तर्कपूर्ण एवं सारगर्भित है। इसका प्रथम संस्करण काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली के तत्त्वधान में प्रकशित हुआ था। यह संस्करण मद्रास पुस्तकालय में उपलब्ध पाण्डुलिपि के आधार पर मुद्रण हुआ था। इसकी रचना आठ अक्षरों के अनुष्टुप छन्दों में की गई है। इसमें सात सौ श्लोक हैं। इसमे काश्मीर शैवदर्शन के दार्शनिक चिन्तन का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

शिवसूत्र के प्रमुख विषयों का वर्णन

- चैतन्य आत्मा का वर्णन ।
- योनीवर्ग कलाशरीर का वर्णन ।
- मातृका देवी का वर्णन ।
- उद्यम भैरव का वर्णन ।
- त्रिविध अवस्थाओं का विवेचन ।
- महायोगी की भूमिकाओं का स्वरूप ।
- वितर्क आत्मा का ज्ञान ।
- उपायों का वर्णन ।
- कलादि शरीर माया का विवेचन ।
- नर्तक आत्मा शिव का वर्णन ।
- जप एवं दान का महत्त्व ।
- मुक्त केवली का विवेचन ।
- कारणशक्ति का विवेचन ।
- चित्त की स्थितियों का वर्णन।।

इस प्रकार शिवसूत्र में विभिन्न विषयों पर विस्तार से प्रकाश ड़ाला गया है।

10. तन्त्रासार :– यह "तन्त्रालोक" की शिक्षाओं पर आधारित है। इसमें गद्यात्मक सारांश के आधार पर तन्त्रालोक की सभी शिक्षाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है।

- मालिनीमत का सारतत्त्व विवेचन।
- शिवसूत्र प्रमाण का वर्णन ।
- मोक्ष का लक्षण ।
- चतुर्विध उपायों का वर्णन ।
- चतुर्विध ज्ञान का वर्णन ।
- शिवशक्ति की अभेदात्मकता का वर्णन ।
- अनुत्तर तत्त्व की विस्तार पूर्वक व्याख्या वर्णन ।
- विसर्ग तत्त्व की विस्तार पूर्वक व्याख्या वर्णन ।
- सृष्टि के तत्त्वों का विवेचन ।
- नवद्वीपों का वर्णन।
- रुद्र के विविध स्वरूपों का वर्णन ।
- सदाशिव के स्वरूप का विस्तारपूर्वक वर्णन ।
- नाद और बिन्दु का वर्णन ।
- कालाध्वा निरूपण का विवेचन ।
- ज्ञानकर्म का विस्तार पूर्वक वर्णन ।
- वैराग्य का वर्णन ।
- शक्तिपात का वर्णन ।
- विशिष्ट गुरु की समीक्षा का वर्णन ।
- उपासना एवं पूजाविधि का वर्णन ।
- मातृका के संदर्भ में विस्तार पूर्वक वर्णन ।
- दीक्षा विधि का विवेचन ।
- स्वर्ग एवं नरक का विवेचन ।
- श्राद्ध विवेचन ।
- परमार्थ विषय का विवेचन ।
- अनुग्रह विवेचन ।
- योगिनियों का विस्तार वर्णन ।

इस प्रकार से तन्त्रालोक में विविध विषयों पर गहनता से चर्चा की गई है।

11. तन्त्रालोकः—आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा रचित सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ "तन्त्रालोक" है। यह छत्तीस आह्निकों में सम्पूर्ण विभाजित है। इसमें शैवदर्शन के सिद्धान्तों का परिगणन किया गया है। इसमें साधना पक्ष के सिद्धान्तों का सर्वाधिक वर्णन किया गया है। शैवदर्शन की ज्ञानमीमांसा पर इसमें प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ अनुष्टुप छन्द में वर्णित है। इसके कुल छतीस आह्निक् और तीन हजार उनसठ श्लोक हैं। यह ग्रन्थ आचार्य अभिनवगुप्त की बुद्धि का लोकोत्तर परिणाम है।

इसमें वर्णित कतिपय विषय इस प्रकार हैं। जैसे—

- शिव सूत्र का प्रमाण ।
- मोक्ष का लक्षण।
- शिव शक्तिरू का स्वरूप।
- उपायों का वर्णन।
- दीक्षा का वर्णन।
- नवदीपों का वर्णन।
- स्पन्द और ऊर्मि का वर्णन।
- संविद् तत्त्व का स्वरूप।
- बिम्ब और प्रतिबिम्ब का विवेचन।
- शिव शक्ति का संघट का स्वरूप।
- अनुत्तरतत्त्व का विवेचन।
- नाद-बिन्दु और विसर्ग का विवेचन।
- परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी वाणी का स्वरूप।
- प्रमाण-प्रमेय-प्रमातृ आदि का विस्तृत विवेचन।
- इघ-पिंगला-सुषुम्ना आदि का विस्तृत विवेचन।
- शिवरुद्रों का ब्रह्माण्ड विवेचन।
- नाद-बिन्दु का विश्वात्म स्वरूप का वर्णन।
- अनुग्रह का विस्तारपूर्वक विवेचन।
- षट् त्रिंशत् तत्त्वों का वर्णन।
- शिवभक्ति द्वारा शक्तिपात का विवेचन।
- साधना विधि का विवेचन।

- उपासना का विवेचन।
- मन्त्रमात्रिका का विवेचन।

इस प्रकार से तन्त्रालोक में अनेक प्रकार के विषयों का वर्णन उल्लिखित है।

13. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् :—आचार्य क्षेमराज द्वारा रचित यह ग्रन्थ काश्मीर शैवदर्शन का प्रारम्भिक अध्ययन ग्रन्थ माना जाता है। इसमें मात्र बीस सूत्र हैं। इसमें सृष्टि का संकोच एवं उसके विस्तार का स्पष्ट वर्णन किया गया है। जैसे—चिति शक्ति सब का कारण सुखोपायप्राप्य तथा महाफल है। चिति ही विश्व की सिद्धि का हेतु है।

इसमें वर्णित विषय इस प्रकार हैं—

- चिति का स्वरूप।
- विश्वरचना और इसकी कारणता।
- चिति में विश्व का उन्मीलन।
- प्रमाता और प्रमेय से विश्व की अनेकरूपता का वर्णन।
- चौतन्य, आत्मा या चित्त का वर्णन।
- त्रिविध मलों का वर्णन।
- शिव का संसारित्व।
- शक्ति संकोच एवं विकास की दशा।
- जीवन मुक्ति का विवेचन
- समाधि का वर्णन।

14. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी :—"ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविर्शिनी" आभिनवगुप्त द्वारा रचित प्रसिद्ध टीका है। इसमें कम और अल्प व्याख्या होने के कारण यह लघ्वी विमर्शिनी के नाम से जानी जाती है। जबकि "ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी" "ईश्वरप्रत्यभिज्ञा" पर दुसरी टीका है। यह सूदीर्घ और विस्तृत व्याख्या के कारण प्रसिद्ध है।

15. परमार्थसार :—आचार्य क्षेमराज के शिष्य योगराज द्वारा विरचित यह ग्रन्थ शैवदर्शन की प्रारम्भिक शिक्षा हेतु अन्यन्त उपयोगी है। इसमें अधोलिखित बिन्दुओं पर विस्तार से वर्णन किया गया है। जैसे—

- विश्व के आधार परतत्त्व का स्वरूप।
- शुद्धाध्वा के पाँच तत्त्वों का विकास।

- प्रकृति का अन्तरूकरणों सहित विकास।
- कञ्चुकों के आवरण का स्वरूप।
- शिव के स्वातन्त्र्य का विविध स्वरूप।
- साधक योगी की परब्रह्मस्वरूपता का वर्णन।
- जीवनमुक्ति एवं मुक्ति का स्वरूप।
- तीव्र शक्तिपात् का वर्णन।
- मुक्त आत्मा का स्वरूप।

इस प्रकार से काश्मीर शैवदर्शन के ग्रन्थों का वर्णन इस ज्ञान परम्परा में मिलता है। अतः सारांश में काश्मीरशैवदर्शन के आचार्य एवं उनके ग्रन्थों का वर्णन (कालक्रम के अनुसार) किया गया है।

।। इति शिवम्।।

संदर्भ ग्रंथ :

1. त्रिकशास्त्र रह्स्य प्रक्रिया, स्वामी लक्ष्मण जू महाराज द्वारा हस्तलिखित, पृ. - 6
2. पूर्वोक्त
3. सोमानन्द, शिवदृष्टि, पृष्ठसंख्या-7/107
4. सोमानन्द, शिवदृष्टि, पृष्ठसंख्या-7/121-122
5. सोमानन्द, शिवदृष्टि , आ.-7/114-1
6. k.C. Pandey, Abhinava Gupta : An Historical and Philosophical Study, Page No - 154
7. J.C.Chatterji- Kashmir Saivism,Page - 7
8. k.C.Pandey, Abhinava Gupta : An historical and Pilosophical Study, page- 161
9. शिवदृष्टि, भूमिका, पृष्ठसंख्या- 5
10. शिवदृष्टि, भूमिका, पृष्ठसंख्या- 5
11. उत्पलदेवशिवस्तोत्रावली में वर्णित ।
12. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका-4/2/3
13. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी-4/2/3
14. k.C.Pandey, Abhinava Gupta : An historical and Philosophical Study, Sec-Ed-1963, page- 162
15. तन्त्रलोक टीका भाग -2, पृष्ठसंख्या- 95
16. माध्वाचार्य, सर्वदर्शनसंग्रह- प्रत्यभिज्ञादर्शन ।
17. उत्पलदेव के सिद्धित्रयी की समीक्षा, डॉ. सुलोचना मिश्र, पृष्ठ संख्या- 86

18. तन्त्रालोकविवेक-1/1
19. तन्त्रालोक-37/52
20. उत्पलवैष्णवकृत, स्पन्दप्रदीपिका, प्रारम्भ श्लोक-7/8
21. शिवसूत्रवार्तिक- पृष्ठसंख्या-2/3
22. k.C. Pandey, Abhinava Gupta : An historical and Pilosophical Study, page-262
23. भास्करी-1/2
24. परमार्थाटीका-198
25. महार्थमञ्जरी, महेश्वरानन्द में वर्णित ।
26. शिवसूत्रवार्तिक के उपसंहार में वर्णित ।
27. देवीनामविलास, पृष्ठसंख्या-184
28. k.C. Pandey, Abhinava Gupta : An Historical and Philosophical Study, Page No - 154
29. J.C.Chatterji- Kashmir Saivism, Page - 7
30. मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम्, अधिकार-23/39-43
31. स्वच्छन्दतन्त्रम्, भाग-4, पृष्ठसंख्या-26
32. नेत्रतन्त्र, भाग-2, अधिकार-16/23
33. नेत्रतन्त्र, भाग-2, अधिकार-22/12
34. विज्ञानभैरवम्, श्लोक संख्या-162
35. उत्पलवैष्णवकृत, स्पन्दप्रदीपिका, प्रारम्भ श्लोक-7/8
36. शिवसूत्रवार्तिक- पृष्ठसंख्या-2/3

तृतीय अध्याय

काश्मीर शैवदर्शन की दार्शनिक मीमांसा

भारतीय दर्शन का लक्ष्य मोक्ष माना जाता है। मोक्ष को प्राप्त करने के लिये प्रत्येक दर्शन में गहनतम मीमांसा की गई है। जिसको समझने के लिये दार्शनिकों ने इस मीमांसा को तीन भागों में विभाजित किया गया है। किसी भी दर्शन को जानने के लिये त्रिविध मीमांसा का ज्ञान होना अनिवार्य है। जिसका विवेचन इस प्रकार है–

- तत्त्वमीमांसा–इसमें दर्शन के तत्त्वों का अध्ययन किया जाता है।
- ज्ञानमीमांसा–इसमें प्रमाण एवं ज्ञान के साधनों का वर्णन किया जाता है।
- आचारमीमांसा–इसमें मोक्ष, साधना आदि विषयों का वर्णन किया जाता है।

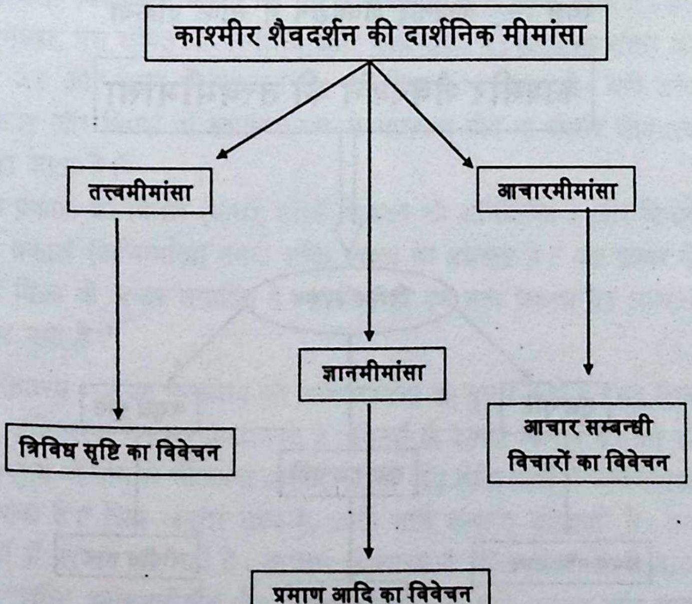

1.तत्त्वमीमांसा का स्वरूप–भारतीय दर्शन में काश्मीर शैवदर्शन की तत्त्वमीमांसा सर्वाधिक प्रबल मानी है। इसमें छत्तीस तत्त्वों का परिगणन किया जाता है। तत्त्वमीमांसा शब्द दो तत्त्वों से मिलकर बना है। जिसमें तत्त्व शब्द का अर्थ है–वह वस्तु जिसकी सत्ता किसी न किसी रूप में लोक सिद्ध है, और जिसमें कुछ करने या होने का सामार्थ्य निहित है। मीमांसा शब्द का सामान्य अर्थ होता है–मन्थन करना या विचार करना। अतः तत्त्वमीमांसा शब्द का अर्थ स्पष्ट है–संसार की गतिमान प्रक्रिया खोज करना या उनके उपर विचार करना ही तत्त्वमीमांसा है। काश्मीर शैवदर्शन के प्रसिद्ध आचार्य अभिनवगुप्त ने तत्त्व की परिभाषा देते हुए कहा है–"तत्त्व" शब्द का अर्थ–**"तनोति सर्वमिति तत्", परं रूपं तस्य भावस्तत्त्वम्।** अर्थात् जो सबका तनन या विस्तारण करता है, वह परम रूप शिव तत शब्द का वाच्य है। उस तत् का भाव तत्त्व अथवा शिवतत्त्व कहलाता है।[1] उसी के स्वातन्त्र्य से छत्तीस रूपों में भी शिव ही अनुगत है। अतः वे तत्त्व कहलाते हैं। काश्मीर शैवदर्शन में छत्तीस तत्त्व माने जाते हैं।

इनमें त्रिविध मलों का न्युनाधिक भावों में प्रभाव रहता है। अतः काश्मीर काश्मीर शैवदर्शन की तत्त्वमीमांसा को तीन भागों में विभाजित किया गया है। जिसका चित्र सहित वर्णन इस प्रकार है।

चित्र :– काश्मीर शैवदर्शन में सृष्टि प्रक्रिया

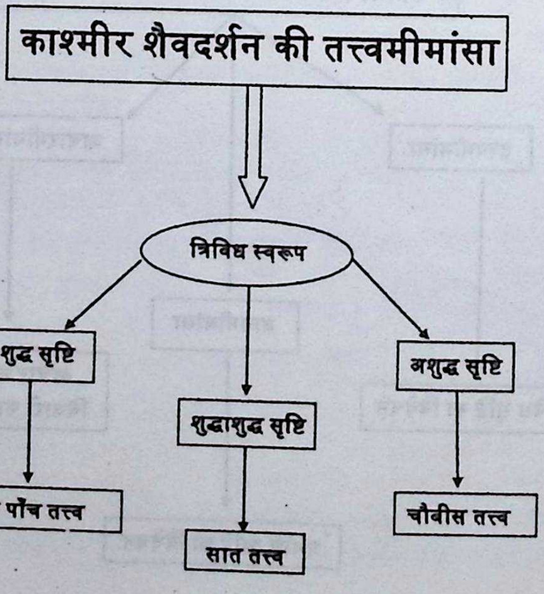

प्रथम पाँच तत्त्व :- शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, सदविद्या ।
सात तत्त्व :- माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति, पुरुष ।
चौबीस तत्त्व :- अव्यक्त, महत्, अहंकार, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच क्रमेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्र, पाँच महाभूत ।।

(क) शुद्ध सृष्टि

शुद्ध सृष्टि में प्रथम पाँच तत्त्व शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वरतत्त्व और शुद्धविद्यातत्त्व को गिना जाता है। इनमें शिव और शक्ति में शान्त्यातीत अवस्था होती है तथा सदाशिव, ईश्वर और शुद्धविद्या में शान्तावस्था रहती है। इन तत्त्वों पर मल का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः इन्हें शुद्धसृष्टि कहा जाता है। इनका वर्णन इस प्रकार है।

1. **शिवतत्त्व :–** शिव ही एकमात्र परमतत्त्व है। परमशिव शुद्ध अद्वैत की तत्त्वातीत स्थिति है। इसे ही परमकारण कहा गया है–**"शिव परमकारणम्"** ।[2] इसे अनुत्तर तत्त्व भी कहा जाता है।यह सदैव दो भाव विश्वमय और विश्वोतीर्ण में रहता है। इस चित् की शक्ति चित्ति है–**"चितिः स्वतन्त्रता विश्वसिद्धिहेतुः"** ।[3] यह अपनी स्वेच्छा से विश्व का निर्माण करता है–**"स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति ।"**[4] इसको अनेक नामों से जाना जाता है। इसे परमेश्वर, परा संवित् या परमशिव आदि कहा जाता है। यह तत्त्व संसार की हर जड़ और चेतन में विद्यमान है। यह नित्य और अनन्त है। यही तत्त्व प्रकाश और विमर्श के स्वातन्त्र्य-रूप से भासमान होने के कारण शिवतत्त्व कहा जाता है।[5]

   यह प्रकाश का विमर्श (बोध), उसके शिवरूप की अभिव्यक्ति है और विमर्श का प्रकाश (अभिव्यक्ति) उसके शक्ति स्वरूप की प्रधनता है।[6] इस प्रकार से यह विश्व के अन्दर समाहित है। इसलिये ही इसे सत्य प्रकाश का आभास कहा गया है।[7]

2. **शक्तितत्त्व :–** यह परमशिव की आभासरूपता का दुसरा तत्त्व है। यह शिव का अभिन्नरूप है। यह प्रकाशात्मा है। विमर्श ही इसका स्वभाव है। इसे ही विश्वमय के नाम से भी जाना जाता है। शिव और शक्ति दोनों में अविनाभाव सम्बन्ध है।[8] शिव अनुत्तर तत्त्व है, शक्ति तत्त्व अनुत्तरा कहलाती है। इन दोनों में परस्पर भेद नहीं है। आचार्य सोमानन्द ने "शिवदृष्टि" में भी कहा है–**"शक्ति शक्तिमतोर्भेद शैव जातु न विद्यते ।"**[9] यही अनुत्तर तत्त्व ज्ञान

व क्रिया का समवेत रूप है।[10]

इसको परावाक्, स्वातन्त्र्य आदि नामों से भी जाना जाता है। शिव में जो पूर्ण अकृत्रिम अहंभाव है उसी को विमर्श शक्ति कहते हैं। इसके अभाव में शिव अनीश्वर एवं जड़ हो जाएगा। क्योंकि दोनों तत्त्व एक ही है। नेत्रतन्त्रटीका में भी कहा गया है–

"शक्तिश्च शक्तिमांश्चौव पदार्थद्वयमुच्यते।
शक्त्योऽस्य जगत् त्स्नं शक्तिमांश्च महेश्वरः"।।[11]

अतः शिव के बिना शक्ति एवं शक्ति के बिना शिव की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसके पञ्चविध स्वरूपों का सामान्य वर्णन चित्र सहित यहाँ प्रतिपादित किया गया है।

चित्र :– शक्तितत्त्व के पञ्चविध स्वरूप

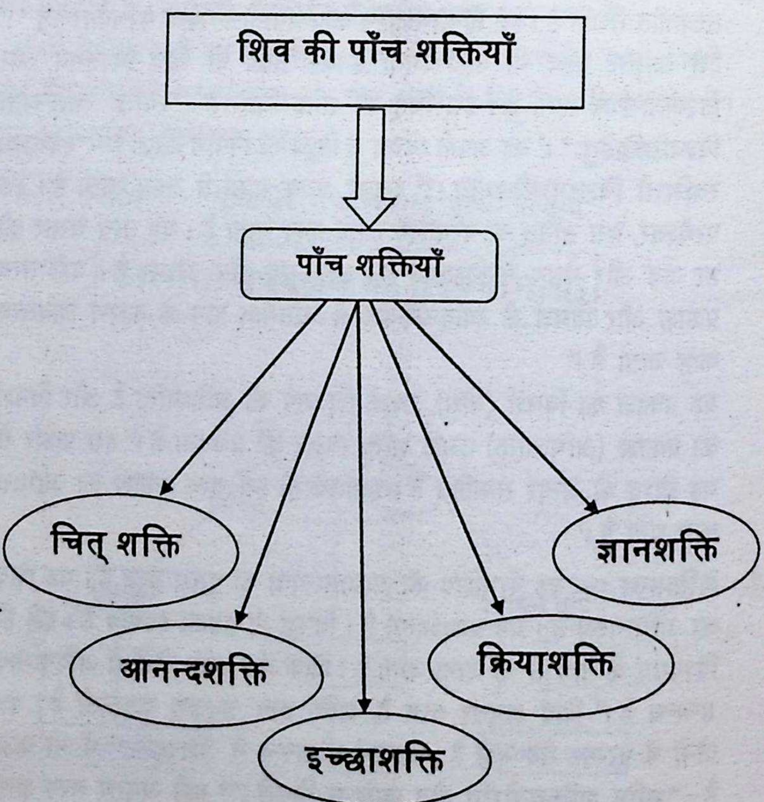

1. **चित् शक्ति :**– चित् शक्ति से परमशिव प्रकाश्य वस्तुओं के अभाव में भी स्वयं प्रकाशित होते रहते हैं।
2. **इच्छाशक्ति :**– परमशिव अपने को स्वतन्त्र और अप्रतिहत इच्छा से सम्पन्न अनुभव करते हैं।
3. **आनन्द शक्ति :**– इससे वस्तुओं के उपयोग के बिना ही परमेश्वर पर निरतिशय आनन्द में मग्न रहते हैं।
4. **ज्ञान शक्ति :**– इस शक्ति के कारण शिव स्वयं ज्ञानरूप है तथा सभी पदार्थों का पूर्ण ज्ञान रखते हैं।
5. **क्रिया शक्ति :**– इस शक्ति के द्वारा शिव स्वयं को सभी रूपों में धारण करने में स्वतन्त्र है।

3. सदाशिवतत्त्व :– इसे सदाख्य तत्त्व भी कहते हैं।[12] इस तत्त्व में अहन्ता और इच्छा-प्राधान्य रहता है। जब शक्ति में उन्मेष होता है, तब सृष्टि होती है। जब निमेष होता है तब जगत् का लय होता है। इसी उन्मेष के कारण सदाशिवतत्त्व की अभिव्यक्ति होती है। सृष्टि के विकास में यह पहला तत्त्व है, जिससे सत् का ज्ञान होता है।[13] इस अवस्था में ब्रह्माण्ड या अनुभव का इदम् अंश धुँधले विचार के रूप में रहता है।[14] इसमें मै और विश्व में कोई भी भेद नहीं रहता है। सदाशिव की इस दशा में मन्त्रमहेश्वर कहा जाता है।

4. ईश्वरतत्त्व :–यह तत्त्व चौथा है। इसमें ज्ञान की सर्वाधिक प्रधानता रहता है। "ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी" में भी कहा गया है–"ज्ञानशक्ति प्राधान्ये ईश्वरतत्त्वम्।"[15] इसमें अहं का ज्ञान और विश्व का आभास दोनों समान रूप से एक साथ विद्यमान रहता है। यहाँ अहम् अंश गौण रहता है और इदम् की प्रधानता होती है। "यह मैं हूँ" इसका शुद्ध प्रत्यय सहित ज्ञात होता है। अर्थात् विश्व का स्फुटता होने वाला वेद्य परामर्श ही–ईश्वरतत्त्व कहलाता है।[16] इसमें प्रमाता की संज्ञा मन्त्रेश्वर कहलाती है।

5. शुद्धविद्यातत्त्व :– काश्मीर शैवदर्शन में इस तत्त्व को शुद्ध विद्या या सद्विद्या के नाम से जाना जाता है। इसमें क्रिया का प्राधान्य होता है। इस अवस्था में विमर्श का रूप "अहम् इदम्" प्रत्यय द्वारा प्रकट किया जाता है।[17] यहाँ भेदाभेद की अवस्था रहते हुए भी "मैं" और "यह्" की बराबर स्थिति बनी रहती है। अर्थात् इसमें यह ज्ञान होता है कि मैं विश्व हूँ। यह मेरा रूप मुझसे भिन्न नहीं है। इसलिये इसे शुद्धविद्या कहते हैं। इस प्रकार इन पाँच तत्त्वों को शिव अपनी इच्छा से अवभासित करता है। जिनका वर्णन "तन्त्रालोक" में इस प्रकार किया गया है–

"तदेवं पञ्चकमिदं शुद्धोऽध्वा परिभाष्यते।
तत्र साक्षाच्छिवेच्छैव कर्त्तर्यभासितभेदिका"।।[18]

इन भेदों का नाम इस प्रकार है—

"शक्तिजा मन्त्रमहेशा मन्त्रनायकाः।
मन्त्रा इति विशुद्धाः स्युरमी पंचगणाः क्रमात्"।।[19]

इस क्रम को शांभव, शक्तिज, मन्त्रेश्वर, मन्त्रनायक तथा मन्त्र कहा गया है। यहाँ तक की सृष्टि शुद्ध सृष्टि कही जाती है।

(ख) शुद्धाशुद्ध सृष्टि

तत्त्वमीमांसा में शुद्धाशुद्ध सृष्टि को दुसरे स्थान पर रखा गया है। इसमें माया से पुरुष तत्त्व तक वर्णन किया जाता है। इनमें मलों का किञ्चित् प्रभाव होता है। माया के पाँच कंचुकों का प्रभाव होता है। अतः इस सृष्टि को शुद्धासृष्टि कहा जाता है। इसका वर्णन इस प्रकार है।

6. मायातत्त्व :— माया परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति है, जो भेद-दशा का अवभासन करने के कारण माया-शक्ति कहलाती है—**"परमेश्वरस्य भेदावभासने स्वातन्त्र्य तदेवाव्यतिरेकिणि अपूर्णताप्रथनेन मीनाति हिनस्ति इति मायाशक्तिः उच्यते।"**[20] इसे परमेश्वर की स्वरूपगोपनात्मिका इच्छाशक्ति भी कहा गया है।[21] इस अवस्था में विषयी और विषय की एकता नष्ट हो जाती है। यह ईश्वर की दैवी शक्ति है। इसकी दो प्रमुख शक्तियाँ-परानिशा एवं विमोहनी मानई गई हैं। परानिशा में मायातत्त्व की अभिव्यक्ति तथा अविभक्त भेदावभास की उपदद्या दशा होती है।[22]

विमोहनी ईश्वर की वह शक्ति है जिसके द्वारा चिदात्म अपने को परिच्छिन्न या सीमित रूप में कर लेता है। माया को ही विमोहनी कहा गया है।[23] माया का स्वरूप तिरोधानकारी है।[24] इस माया के पाँच कञ्चुक हैं। जिनका सृष्टिप्रक्रिया में विशेष स्थान है।

चित्र :– माय के पाँच कञ्चुक

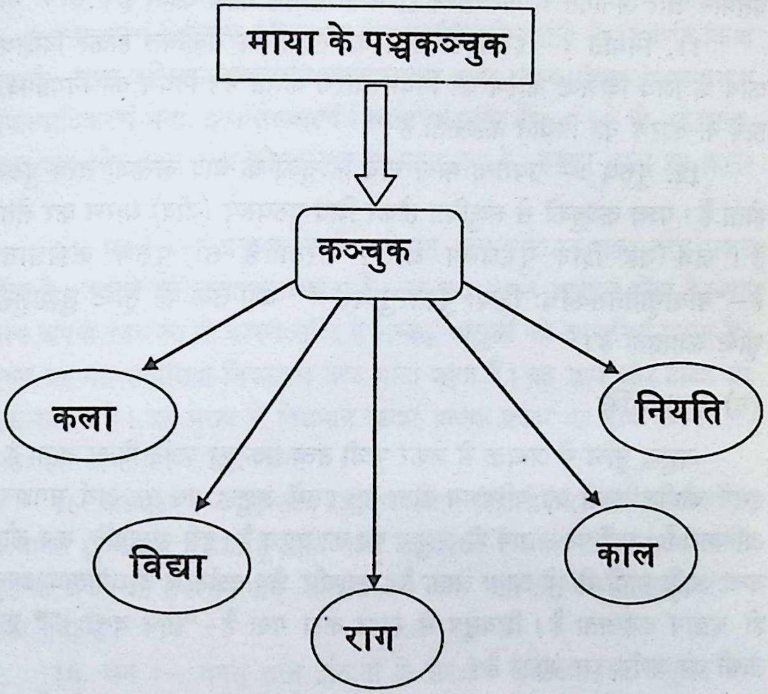

पञ्चकञ्चुक :– माया के पांच कञ्चुकों की सामान्य दार्शनिक मीमांसा इस प्रकार है।

7. कला :– इसमें के द्वारा कर्तृत्व का संकोच होता है। शिव का स्वातान्त्र्य सीमित हो जाता है। उसके सर्वकर्तृत्व के स्थान पर किञ्चित् कर्तृत्व आ जाता है। अतः इसे किञ्चित्कर्तृत्वोद्बलनमयी कहा गया है।[25]

8. विद्या :– इसमें ईश्वर का सर्वज्ञत्व सिमटकर किञ्चिज्ञत्व में आ जाता है। जीव में कुछ वेद्यों का ज्ञान उत्पन्न होने के कारण इसे किंचिज्ज्ञत्वोन्मीनरूपा कहा गया है।[26]

9. राग :– राग तत्त्व कञ्चुक पूर्णतृप्ति से यत्किञ्चित भोगों आ जाता है। किसी भी वस्तु मम् समझकर उसे गुणशालिनी मानने लगता है। अतः इस गुणारोपणनय शक्ति को ही राग कहा गया है।[27]

10. काल :– जिसके द्वारा परमेश्वर नियत्व संकुचित होकर अतीत, वर्तमान और अनागत में परिच्छिन्न हो जाता है उसे काल कहते हैं।

11. नियति :– इसमें परमेश्वर का स्वातान्त्र्य संकुचित होकर विशिष्ट कार्य के लिये विशिष्ट कारण का नियम धारण करता है। नियम की नियामिका होने के कारण यह नियति कहलाती है।[28]

12. पुरुष :– उपरोक्त माया पाँच कञ्चुकों के बाद बारहवाँ तत्त्व पुरुष होता है। पञ्च कञ्चुकों से संकुचित होकर शिव पुरुषरूप (जीव) धारण कर लेता है। जब यह शिव पुरुषरूप धारण करता है तो पुरुष कहालाता है–**"मायागृहीतसंकोचः शिवः पुंस्तत्त्मुच्यते।"**[29] यहाँ तक की सृष्टि शुद्धाशुद्ध सृष्टि कहलाती है।

(ग) अशुद्धसृष्टि

अशुद्ध सृष्टि में अव्यक्त से लेकर पृथ्वी तत्त्व तक का वर्णन किया जाता है। इसमें चौबीस तत्त्वों का परिगणन होता है। इसमें अशुद्ध पद का अर्थ समझना अनिवार्य है। यहाँ पर अज्ञान ही अशुद्ध पद का वाच्य है। इसे अख्याति, मल और बन्ध आदि नामों से भी जाना जाता है। काश्मीर शैव दर्शन में बन्धनात्मक ज्ञान ही अज्ञान कहलाता है। शिवसूत्र में स्पष्ट कहा गया है–"ज्ञानं बन्धः।"[30] इन तत्त्वों का वर्णन इस प्रकार है।

13. प्रकृति :– माया प्रमाता का जो सामान्य आचार इदम् इतने ही रूप को अवभासित हुआ प्रमेय तत्त्व होता है, उसे प्रकृति कहते हैं। शिव के भेदमय दृष्टिकोण से अवभासित होता हुआ जो उसका वेद्यरूप विश्व का अविभक्त सामान्य आकार है उसे ही प्रकृतितत्त्व रूप में जाना जाता है। सद्विद्या के अहम् अंश से पुरुष का उन्मेष एवं इदम् अंश से प्रकृति का उन्मेष होता है। यह त्रिगुणात्मिका है। यही तत्त्वों के विकास का प्रधान और मूलकारण है। इससे २३ प्रमेयों का विकास होता है–

"त्रयोविंशतिधा मेयं यत्कार्यकारणात्मकम्।
तस्याविभागरूप्येकं प्रधानं मूलकारणम्।।"[31]

काशमीर शैवदर्शन में प्रकार से छत्तीस तत्त्वों द्वारा सृष्टि का सर्जन माना गया है। इनमें शक्ति की विशेष प्रधानता है। वस्तुतः शिव और शक्ति अभिन्न रूप हैं। दोनों एक-दुसरे के बिना नहीं रह सकते हैं।

त्रिविध अन्तरूकरण :– त्रिविध अन्तरूकरणों में बुद्धितत्त्व, अहङ्कार और मनस् तत्त्व का परिगणन किया जाता है। सांख्यकारिका में स्पष्ट कहा गया है–"अन्तरूकरणं त्रिविधम्।"[32] इनका ईश्वरप्रतभिज्ञाविमर्शिनी में भी वर्णन किया गया है–**"तत्र बुद्धिरध्यवसायसामान्यमात्ररूपा ग्राह्य-ग्राहकाभिमानोऽहङ्काररू संकल्पादिकरणं मनः, इत्यन्तरूकरणं त्रिधा।"** काश्मीर शैवदर्शन में भी बुद्धितत्त्व, अहङ्कार और मनस् तत्त्व को अन्तःकरण माना गया है। इनका वर्णन इस प्रकार है।

14. महत् :– अन्तःकरण में सर्वप्रथम सत्त्वगुणप्रधान महत् तत्त्व प्रकट होता है। उसको बुद्धितत्त्व कहा जाता है। यह एक स्वच्छ जडतत्त्व होता है। यह तत्त्व अपनी स्वच्छता के कारण सृष्टि में सम्बद्ध वस्तुओं को आभासित करता है। पुरुष का यह सर्वाधिक निकटतम तत्त्व माना जाता है। यह ज्ञान और क्रिया का एक साधन है। यह पुरुष में विद्यमान रहकर प्रत्येक प्रकार का बोध कराती है। अतः इसे अन्तःकरण कहा जाता है।

15. अहंकार :– यह तत्त्व रजोगुण प्रधान होता है। यह सीमित होता है। मैं जानत हूँ, मैं कर सकता हूँ आदि भावों का द्योतक है। वह सभी कुछ न जानते हुए भी अपने को सर्वशक्तिमान् समझता है। अतः **"अभिमानोरूपोऽहङ्कारः"**[33] कहा गया है।

16. मन :– मनस् तत्त्व इन्द्रियों के सहयोग से प्रत्यक्ष का अनुभव एवं संकल्प विकल्प करता है। प्रत्येक कार्य करने में यह करना या न करना के भाव को जगाता है। पुरुष के अन्दर उत्पन्न विचारों को पैदा करने वाली शक्ति मनस् तत्त्व ही है। यह अहङ्कार का परिणाम होता है। संकल्प और विकल्प करना ही इसका प्रमुख कार्य है।

पाँच ज्ञानेन्दियाँ

मानव व्यवहारों का कराने वाली इन्द्रियाँ ही ज्ञानेन्दियाँ कहलाती है। अहङ्कार के परिणाम स्वरूप ही इनकी व्युत्पत्ति होती है। इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

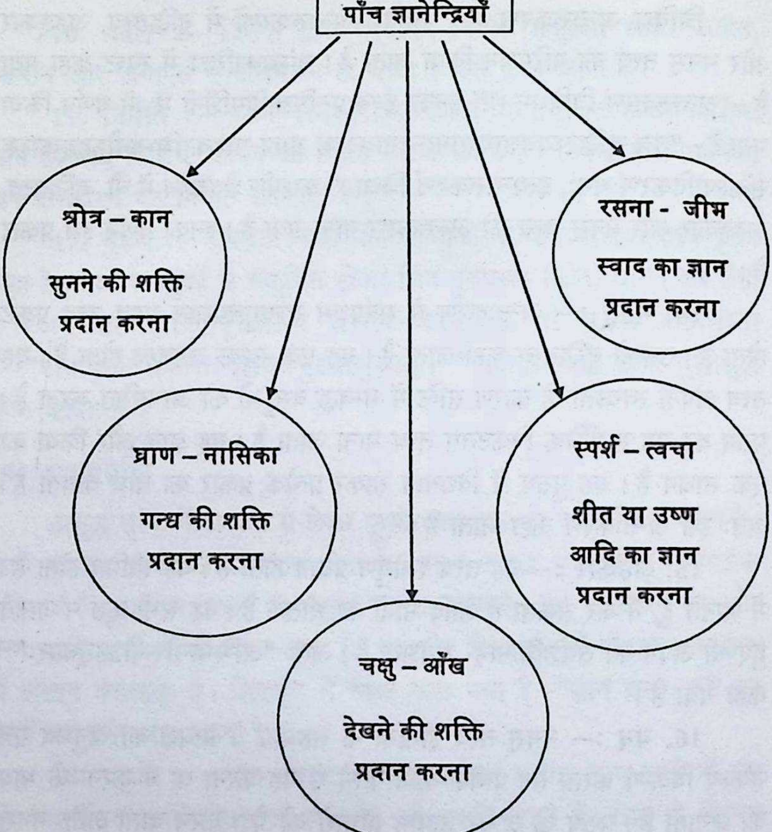

17.चक्षु :– रूप वर्ण आकार की जानकारी प्रदान करना ।

18. श्रोत्र : सुनने की शक्ति प्रदान करना।

19. घ्राण : गन्ध की जानकारी प्रदान करना।

20. रसना : स्वाद की जानकारी प्रदान करना।

21. स्पर्श : शीत, उष्ण, कोमल, कठोर आदि की जानकारी प्रदान करना।

पाँच क्रमेन्द्रियाँ :– मानव के शरीर में पाँच क्रमेन्दियाँ होती है। कर्म करना ही इनका कार्य है। अपने अपने कार्य में ये सदा कार्यरत रहती है। इनका भी संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

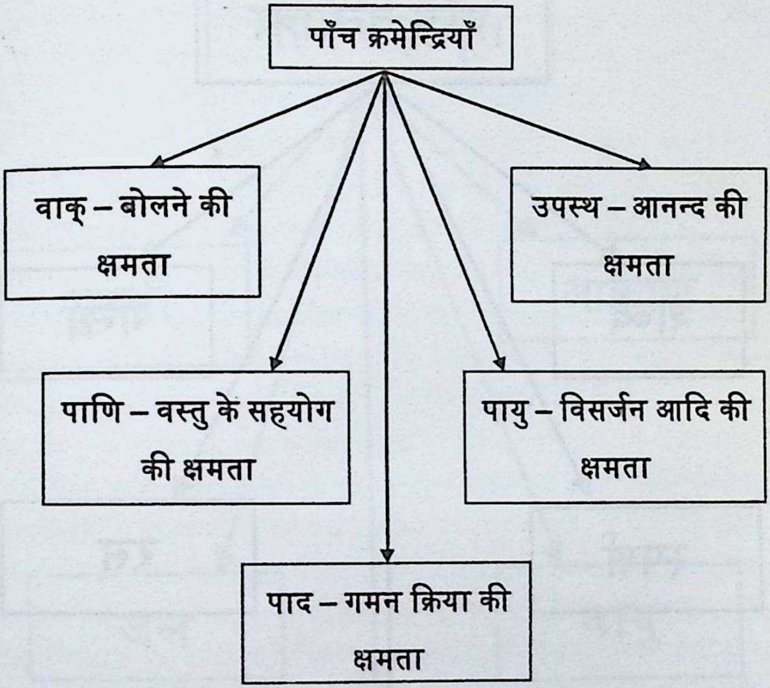

22. **वाक् :** जीव को बोलने की क्षमता प्रदान करना।
23. **पाणि :** वस्तुओं को सहयोग प्रदान करना।
24. **पाद :** गमन करने की क्रिया प्रदान करना।
25. **पायु :** विसर्जन और मलत्याग करना।
26. **उपस्थ :** विषय आनन्द की अवस्था प्रदान करना।

पंचतन्मात्रा :– भूतादि तामस् अहङ्कार से पंचतन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। ये विशेष प्रत्यक्ष के सामान्य तत्त्व होते हैं। इनका भी लघु वर्णन इस प्रकार है।

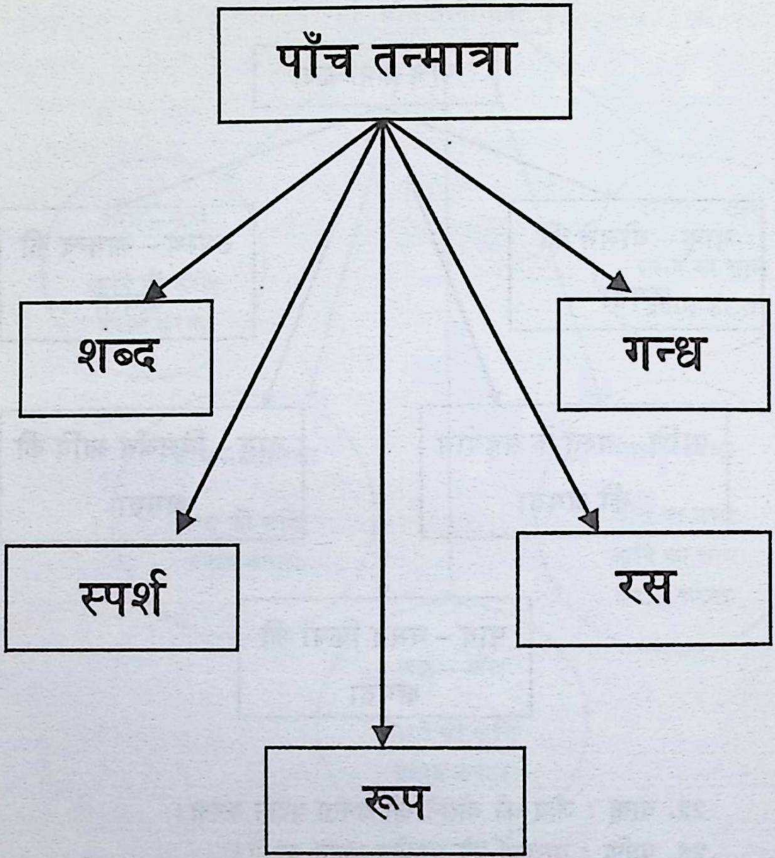

27. शब्द : आकाश का गुण । **28. स्पर्श :** वायु का गुण । **29. रूप :** अग्नि का गुण । **30. रस :** जल का गुण । **31. गन्ध :** पृथ्वी का गुण ।

पञ्चमहाभूत

पंच महाभूतों का शरीर पञ्चतन्मात्राओं का परिणाम हैं। जिनका वर्णन इस प्रकार है।

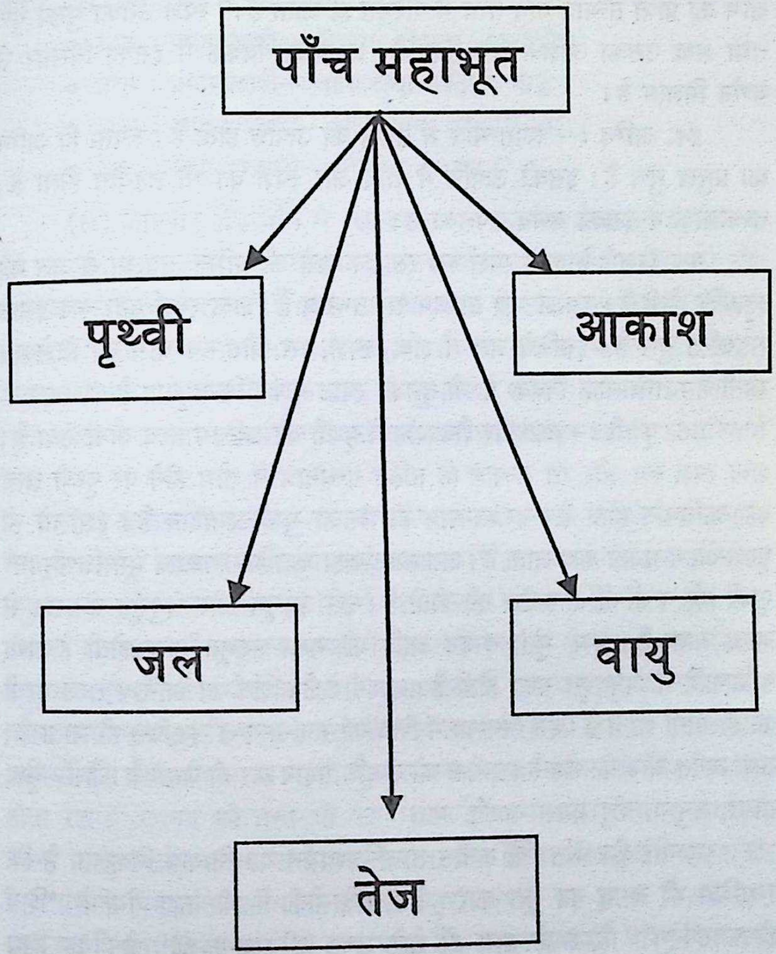

32. आकाश :— पंच माहाभूतों में आकाश प्रथम तत्त्व माना जाता है। सर्वप्रथम शब्द तन्मात्र में परमेश्वर की इच्छा से क्षोभ होता है। क्षोभ का अर्थ होता है—कार्यजनन की और उसकी उन्मुखता का होना। तन्त्रालोक में स्पष्ट कहा गया है—"क्षुभितमिति कार्यजननोन्मुखमित्यथः।" इससे स्पष्ट होता है कि—जब शब्द तन्मात्र आकाश की रचना की ओर उन्मुख होता है तो यह विभिन्न विशेषरूपों वाली ध्वनियों को धारण करता हुआ आकाश रूप में परिणत होता है।[34] शब्दगुण इसकी विशेषता है। यह आकाश आधुनिक विज्ञान में "ईथर" के नाम से जाना जाता है।

33. वायु :— आकाश के बाद स्पर्श तन्मात्र से वायु की उत्पत्ति होती है।

क्षोभ को प्राप्त तन्मात्र वायु तत्त्व में परिणत हो जाता है।[35] स्पर्श उसका मुख्य गुण तथा शब्द उसका अंशिक गुण होता है। तन्त्रलोक विवेक मे इसका विस्तार से वर्णन मिलता है।

34. अग्नि :– रूपतन्मात्र से तेजस् की उत्पत्ति होती है। रूपता ही अग्नि का प्रमुख गुण है। इसकी उत्पत्ति में शब्द और स्पर्श का भी सहयोग होता है। तन्त्रालोक में इसका वर्णन उपलब्ध है।

35. जल :– शब्द स्पर्श रूप रस इन चारों की क्षुभित अवस्था से जल की व्युत्पत्ति होती है। इसका मूल उपादन रस तन्मात्र है। शब्द स्पर्श और रूप इसके सहचरित गुण है। इसलिये जल में शब्द, स्पर्श, रस और रूप चारों की विशेषता रहती है। तन्त्रालोक विवेक में भी इसका स्पष्ट वर्णन किया गया है।[36]

36. पृथ्वी :– काश्मीर शैवदर्शन में पृथ्वी को अन्तिम तत्त्व माना गया है। शब्द स्पर्श रूप और रस तन्मात्र के सहित गन्धमात्र में क्षोभ होने पर पृथ्वी तत्त्व का आविर्भाव होता है। गन्धतन्मात्र ही उसका मुख्य उपादान है। इसलिये ही पृथ्वी को गन्धवती कहा जाता है। अतःस्पष्ट कहा गया है–"गन्धत्वं भूमेर्लक्षणम्।"[37] पृथ्वी की गन्ध भी दो प्रकार की होती है। इसे उद्भूत और अनुभूत के नाम से जाना जाता है। पुष्प, घृत, चन्दन आदि की गन्ध उद्भूत गन्ध होती है तथा पाषाणादि में अनुद्भूत गन्ध होती है। काश्मीर शैवदर्शन का अन्तिम तत्त्व पृथ्वी को ही माना जाता है। इस अवस्था में शिव का रूप अत्यन्त संकुचित हो जाता है। सारा जगत् शिव का रूप है। प्रत्येक को उपाधि प्रदान कर दी जाती है। जैसे–वृक्ष, सागर, मनुष्य, पशु समस्त प्राणी जगत्!

काश्मीर शैवदर्शन के छत्तीस तत्त्वों अध्ययन यह निष्कर्ष निकलता है कि परमशिव ही जगत् का मूल कारण है। तन्त्रालोक में भी कहा गया है "शिव परमकारणम्।"[38] शिव के द्वारा ही सारे जगत् की रचना होती है। वह शिव पञ्चकृत्यकारी है।

वह सृष्टि, स्थिति संहार, तिरोधान और अनुग्रह रूपी पंचकृत्यों को अपने आनन्द के लिये करता है। सृष्टि का रचना करना शिव का पहला कृत्य है। स्वेच्छा से ही वह विश्व का उन्मीलन करता है। "प्रत्यभिज्ञाहृदयम्" में स्पष्ट कहा गया है– स्वेच्छया स्वभितौ विश्वमुन्मीलति।[39]

2. ज्ञानमीमांसा का स्वरूप

(क) भारतीय दर्शन में ज्ञान का स्वरूप : एक सामान्य परिचय भारतीय दर्शन में ज्ञान के स्वरूप की विस्तार से चर्चा की गई है। अतः इसका संक्षिप्त

वर्णन यहाँ प्रस्तुत है।

- स्वत : प्रमाण्यवादी– मीमांसा, वेदान्त, सांख्ययोग।
- परत : प्रमाण्यवादी– न्याय तथा कतिपय बौद्ध।
- स्वत : अप्रमाण्यवादी– सांख्ययोग, कतिपय बौद्ध।
- परत : अप्रमाण्यवादी– मीमांसा, वेदान्त।

(ख) काश्मीर शैवदर्शन में ज्ञानपक्ष :– काश्मीर शैवदर्शन के ज्ञानपक्ष को समझने हेतु उसकी तत्त्वमीमांसा का अवलोकन अनिवार्य है। शिव ही यहाँ ज्ञान का साक्षात्कार करवाते हैं।अतः सर्वप्रथम शिव के स्वरूप को जानना चाहिए। ज्ञान के आधार पर ये प्रमाण के रूप में आगम को ही मानता है। समस्त शैवशास्त्रों का प्रादुर्भाव शिव के द्वारा ही हुआ है। आगम ही सभी प्रमाणों की पुष्टि होती है। अतः आगम ग्रन्थों का अध्ययन एवं चिन्तन अत्यधिक अनिवार्य है।

(ग) प्रमाण विचार :– काश्मीर शैवदर्शन में आगम को ही प्रमाण माना गया है। इसमें अन्य प्रमाणों का कोई स्थान नहीं है। आगम ही इस दर्शन का प्रमुख प्रमाण है। अतः आगम का अर्थ स्पष्ट करना अनिवार्य है। शिव द्वारा प्रोक्त शास्त्र ही आगम हैं। आगम ग्रन्थों में शिव और पार्वती के संवादों का संकलन है। अतः इनको भी अपौरूषेय रचना माना जाता है। आगमशास्त्र के स्रष्टा और वक्ता स्वयं भागवान् शिव माने जाते हैं।[40] भगवान् शिव के द्वारा ही इनका ज्ञान ऋषियों को प्रदान किया था। इसी गुरु परम्परा से यह दर्शन धिरे-धिरे विकसित होता रहा।[41] आगम को तन्त्र भी कहा जाता है। तन्त्र शब्द विस्तार अर्थावली "तन्" धातु "ष्ट्रन्" प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है,जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है–"तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्।" अर्थात् वह शास्त्र जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाए उसे तन्त्र कहते हैं। आगम शब्द को परिभाषित करते हुए आचार्य वाचस्पति मिश्र ने कहा है–"आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मात् अभ्युदयः–निरूश्रेयसोपायाः स आगमः।" अर्थात् अभ्युदय और नियश्रेयस के उपायों का प्रतिपादक शास्त्र आगम कहलाता है। स्वयं भगवान् शिव आगमों के स्रष्टा और वक्ता कहे जाते हैं।[42] शैवागमों में उल्लेख मिलता है कि लोकानुग्रह के लिए श्रीकण्ठ मूर्ति भगवान् शिव ने इनका ज्ञान ऋषियों को प्रदान किया था और उसके बाद शिष्य प्रशिष्य परम्परा से आगमों का जगत् में प्रचलित हो गया। "शिवदृष्टि" में भी आचार्य सोमानन्द ने इसका उल्लेख करते हुए कहा है–

"स्थिता शिष्यप्रशिष्याद्यैर्विस्तीर्ण मठिकोदिता।
तदेवमेतद् विहितं मया प्रकरणं मनाक्।।"[43]

शैवदर्शन का आधार आगम ग्रन्थ ही माने जाते है। वस्तुतः शैवदर्शन की ज्ञानपरम्परा अत्यन्त विशाल है। इनमें सर्वाधिक प्रमुख मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम्, स्वच्छन्दतन्त्रम्, रुद्रायामलतन्त्रम्, नेत्रतन्त्रम्, स्वायम्भुवतन्त्रम्, विज्ञानभैरवम्, नैश्वासतन्त्रम्, शिवसूत्रम्[44] आदि। इनकों ही काश्मीर शैवदर्शन में प्रमाण माना जाता है।

(घ) प्रामाण्य विचार :– ज्ञान के प्रामान्य अप्रामाण्य के विचार प्रसङ्ग में काश्मीर शैवदर्शन स्वयं को स्वतः प्रामान्य अप्रामान्य की पंक्ति में रखता है। इसके अनुसार जिन सामग्रियों का यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है उन्हीं सामग्रियों से ही ज्ञान का प्रामाण्य तथा जिन सामग्रियों से अयथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है उन्हीं सामग्रियों के ज्ञान का अप्रामान्य सिद्ध होता है। शैवमतानुसार प्रमा का स्वरूप ज्ञान का स्वभाव ही प्रामाण्य तथा अप्रमस्वरूप अयथार्थ ज्ञान का स्वभाव अप्रामाण्य है।

(ङ) भ्रमविचार :– भारतीय दर्शन में भ्रान्तिविषयक सिद्धान्त को ख्यातिवाद के नाम से जानते हैं। काश्मीर शैवदर्शन में भ्रान्ति विषयक कोई सिद्धान्त नहीं है, तथापि आचार्य अभिनवगुप्त का विचार को अत्यधिक स्पष्ट कर देता है। अभिनवगुप्त मिथ्या ज्ञान का तात्पर्य अपूर्ण ज्ञान से लेते हैं। अतः अपूर्ण ख्याति के नाम को उनके साथ जोड़ा जाता है। उनके भ्रम सम्बन्धी विचार अज्ञान की काश्मीर शैवतत्त्वमीमांसा के समानान्तर ही है। क्योंकि अज्ञान से तात्पर्य अपूर्णता से लिया जाता है। उन्होंने अज्ञान की तीन प्रकार की बातें स्पष्ट की हैं–

1. समष्टिगत ध्यात्त्विक
2. व्यवहारिक ज्ञान
3. ज्ञानात्मक अज्ञान।

भ्रम विषयक विचार ज्ञानात्मक अज्ञान से सम्बन्ध रखता है। ऐसा प्रतीत होता है–समष्टिगत अज्ञान की अवधारणा इस तीसरे मिथ्याज्ञान को ध्यान में रखकर की गई है। "ईश्वरप्रत्यभिज्ञाअविमर्शिनी" मे स्पष्ट कहा गया है–**"पूर्णप्रथाभावादपूर्णख्यातिरूपाइयम्ऽख्यातिरेव भ्रान्तिः"**[45]। इनमें प्रथम दो महाभ्रान्ति हैं, जबकि तीसरी ज्ञानात्मक भ्रम है।[46]

(च) (1). सप्तविध प्रमाता

काश्मीर शैवदर्शन में प्रमाता का अर्थ होता है—ज्ञाता, प्रमाण द्वारा किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने वाला या अनुभव करने वाला। प्रमाता को प्रमातृ भी कहा जाता है। काश्मीर शैवदर्शन में सप्तविध प्रमाता के स्वरूप का वर्णन किया गया है।

चित्र :— सप्तविध प्रमताओं का वर्णन

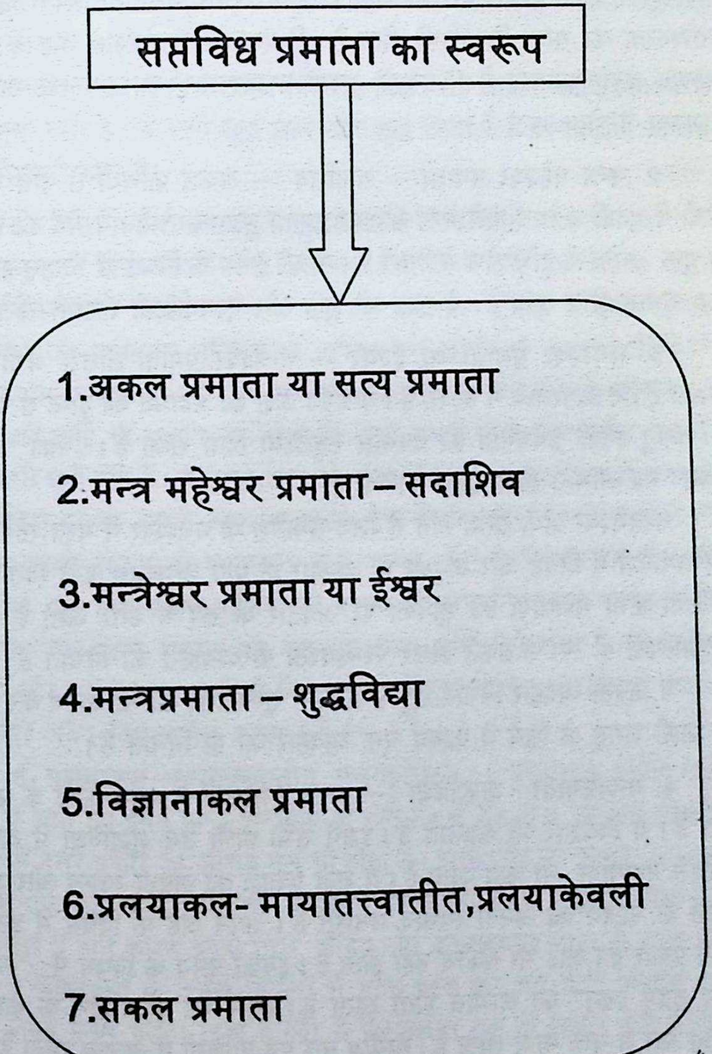

प्रमातृवर्ग में सप्तविध प्रमाताओं के नाम इस प्रकार हैं—

1. अकल प्रमाता या सत्य प्रमाता— शिव काश्मीर शैवदर्शन के सप्तप्रमाताओं में अकल प्रमाता सर्वोत्कृट प्रमाता है। इसको सत्य प्रमाता कहा जाता है। सबसे सर्वश्रेष्ठ प्राणी अकल प्राणी कहालाते हैं। ये प्राणी अभेद की भूमिका पर ठहरे रहते हैं। इन प्राणियों में सदैव अपनी अपरिमित, परिपूर्ण, अद्वैत और पूर्णतः शुद्ध संवितद्रूपता का सतत आभास भी होता रहता है। इसमें प्राणी की अपनी परिपूर्ण परमेश्वरता का सतत विमर्श भी होता है। शिवत्व में ठहरने वाले अकल प्राणी शाम्भव प्राणी कहलाते है।[47] इनकों अपनी प्रकाशरूपता का चमत्कार अधिक प्रधानता से होता रहता है।

2 .मन्त्र महेश्वर प्रमाता — सदाशिव :— अकल प्राणियों से नीचे वाली श्रेणी में सदाशिव तत्त्व वाले मन्त्र महेश्वर प्रमाता हुआ करते है। ये भेद की छाया से युक्त अभेद के दृष्टिकोण से देखते हैं। उनकों प्रमेय के विषय में "अहम् इदम्" का आभास होता रहता है। ये स्वयं को शुद्ध और ऐश्वर्यशाली समझते रहते हैं।

3. मन्त्रेश्वर प्रमाता या ईश्वर — मन्त्रेश्वर प्रमाता तीसरी श्रेणी का प्रमाता है। ये ईश्वरतत्त्व में ठहरते हैं। ये प्रमेय अंश को भेदाभेद की दृष्टि से देखते हैं। परन्तु इनको प्रमेयभाव का आभास स्फुटतया होता रहता है। इनको "इदम् अहम्" का आभास होता रहता है।[48]

मन्त्रमेश्वर प्रायः सतत गति से शिव-समावेश के चमत्कार में मस्त रहते हैं। इस समावेश में निग्रह और अनुग्रह के व्यवहार के प्रति उन्मुखता बनी रहती है। ये कभी कभी महामाया की भूमिका पर अवतार के रूप में उतर आते हैं और मन्त्रप्राणियों के रूप में प्रकट होकर परमेश्वरता के व्यवहारों को निभाते हैं।

ये अपना व्यवहार निभाने हेतु कभी कभी सूक्ष्मशरीर को भी धारण कर लेते हैं। प्राणी जगत् के लिये ये ऐश्वर्य युक्त व्यवहार को ही निभाते हैं।

4. मन्त्रप्रमाता - शुद्धविद्या :— मन्त्र प्रमाताओं में चतुर्थ कोटि के प्राणी आते हैं। ये विद्येश्वर भी कहलाते हैं। इसमें सभी प्राणी उस शुद्धविद्या में ठहरते हैं, जिसे महामाया भी कहा जाता है। ये शुद्ध प्रकाश को अपना स्वरूप और शुद्ध विमर्श के ऐश्वर्य को अपना स्वभाव समझते हैं। अपने अहं के विषय में इनको किसी प्रकार का कोई भी संकोच नहीं होता है। इनकों प्रमेय के विषय में "अहम् अहम् इदम् इदम्" का आभास होता रहता है। इनमें भेद दृष्टि होने के कारण मायीय मल से युक्त माना जाता है। मायीय मल इन प्राणियों में अवश्य रहता है।[49]

माया ही इसके स्वरूप का आवरण करती हैं। परन्तु इनको स्वरूप का आवरण नहीं होता है। अतः अविकसित माया को महामाया कहा जाता है।[50]

अकल से लेकर मन्त्र तक के चार वर्ग वाले प्राणियों की शिव शक्ति सदाशिव ईश्वर और शुद्धविद्या नामक पाँच तत्त्वों के प्राणियों पर शासन करने वाले शिव शक्ति सदाशिव ईश्वर और अनन्तनाथ नामक पाँच तत्त्वेश्वरों की सृष्टि को स्वयं परमशिव अपने स्वभावभूत स्वातन्त्र्य के विलास से अपनी अनिरुद्ध इच्छा के द्वारा करते रहते हैं।[51]

उपरोक्त चार वर्गों के प्राणी पिपासा, निद्रा और जाग्रति आदि विकारों से सदा मुक्त रहते हैं। ये सभी शुद्ध ज्ञान और शुद्ध क्रिया रूपी प्राणनशक्ति के क्षेत्र के अधिकारी होते हैं।

5. विज्ञानाकल प्रमाता - शुद्धविद्या से निचे और माया से उपर :— विज्ञानाकल के प्राणी पाँचवीं श्रेणी के प्रमाता होते हैं। ये सभी महामाया के भीतर ठहरते हैं। इनकी स्थिति महामाया की उस अवान्तर भूमिका में होती है, जो विद्येश्वरों की महामाया भूमिका की अपेक्षा कम कोटी की हुआ करती है।[52] विज्ञानाकल के प्राणियों को प्रमेय रूप जगत् का आभास नहीं होता है। इनको इदं रूपता की कोई भी प्रतीति नहीं होती है। इसी कारन से ये स्फुटमायीय मल के अधिकारी नहीं होते हैं। ये अपने आप को शुद्ध और शुन्य प्रकाशात्मक ही समझते हैं। लेकिन इनको अपनी विमर्शरूपता के ऐश्वर्य की अनुभूति नहीं होती है।[53] जबकि इनको आत्मा की ज्ञानरूपता का अनुभव होता है, क्रियारूपता का नहीं होता है। इन विज्ञानाकल प्राणियों को ऐश्वर्य की अनुभूति न होने कारण किसी भी भावात्मक आत्म आनन्द का आस्वाद प्रायरू प्राप्त नहीं होता है। ये शरीर, इन्द्रिय और अन्तरूकरण आदि से चिरकाल तक विमुक्त रहते हुए विज्ञान से अकल बने रहते अतैव विज्ञानाकल कहलाते हैं।[54]

6. प्रलयाकल—मायातत्त्वातीत, प्रलयाकेवली :— प्रलयाकल प्रमाता छठी श्रेणी में आते हैं। इनमें प्राणी शून्यप्राय ही होते हैं। ये जड़ शून्य को अहं समझंते हैं। इनमें दूसरे प्रकार का आणव मल भी होता है। इसमें जीव को सुषुप्ति अवस्था का आभास् अहोता है। वह नींद से जागने पर कहता है कि सख से सोया हूँ। प्रलयाकल में होने कारण इनके शरीर, इन्दिय और अन्तरूकरण प्रलय हो जाता है। अतः ये कलातत्त्वों के अनेक विकारों से मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।[55] विकारों का आना जाना इनमें चलता रहता है और ये प्रलयाकाल तक ही अकल रहने कारण प्रलयाकल कहलाते हैं।

7. सकल प्रमाता :— सकल प्रमाता प्रमातृ वर्गा का अन्तिम प्रमाता माना जाता है। सातवीं श्रेणी में आने वाले प्रणी सकल कहलाते हैं। ये स्वयं स्वरूप के प्रति अभिमानी नहीं होते हैं। ये संसार सदा भेदाभेद दृष्टि से देखते रहते हैं। इनमें संकुचित कर्तृत्व होता है। त्रिविध मलों का इन पर पूर्णतरू प्रभाव होता है।[56] संसार के सभी जीव, जन्तु वृक्ष कीट आदि सभी इनके अन्तर्गत आते हैं। सभी प्राणी जीव सकल प्रमाताओं की श्रेणी में आते हैं। इनका संसार में आना जाना निरन्तर चलता रहता है।

(2) त्रिविध मल

मल का सामान्य अर्थ होता है—असुद्धता, चौतन्यरूपी सवर्ण से जो ढक लेता है वही मल है। काश्मीर दर्शन में ब्रह्मण्ड की संकुचित अवस्थाएँ मल कहलाती हैं। जिसके कारण आत्मा की वास्तविक अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है। त्रिविध मलों का लघु वर्णन इस प्रकार है।

आणव मल :— इसकों मूल मल माना जाता है। यह परम चौतन्य को संकुचित करके अणु बना देता है। अणु का अर्थ् होता है—क्षुद्र, अत्यन्त प्रिच्छिन्न बिन्दु। इसकी संकुचित दशा से परम चौतन्य का वास्तविक स्वरूप ढक जाता है। अर्थात् पूर्ण स्वरूप का अज्ञान, संकोच या अणुता-आणव मल है।

मायीय मल :— यह परिसीमित स्थिति है जो माया के द्वारा आविर्भूत होती है। उसी माया के द्वारा जीव को सूक्ष्म और स्थूल शरीर प्राप्त होता है। यह माया विश्वव्यापि है। इसके प्रभाव से जीव स्वयं को भूल जाता है। अतः उसे प्रत्यभिज्ञा करने की आवश्यकता पडती है।

कार्म मल :— अन्तरूकरण की प्रेरणा से ज्ञानेन्द्रियाँ और क्रमेन्द्रियाँ द्वारा निष्पन्न कर्म की जो वासनाएँ अथवा जो संस्कार रह जाते हैं। उन्हें कार्म मल कहा जाता है। यही वासनाएँ मनुष्य को एक जन्म से दुसरे जन्म की और प्रवृत्त कराती है।

त्रिविध मलों का चित्र

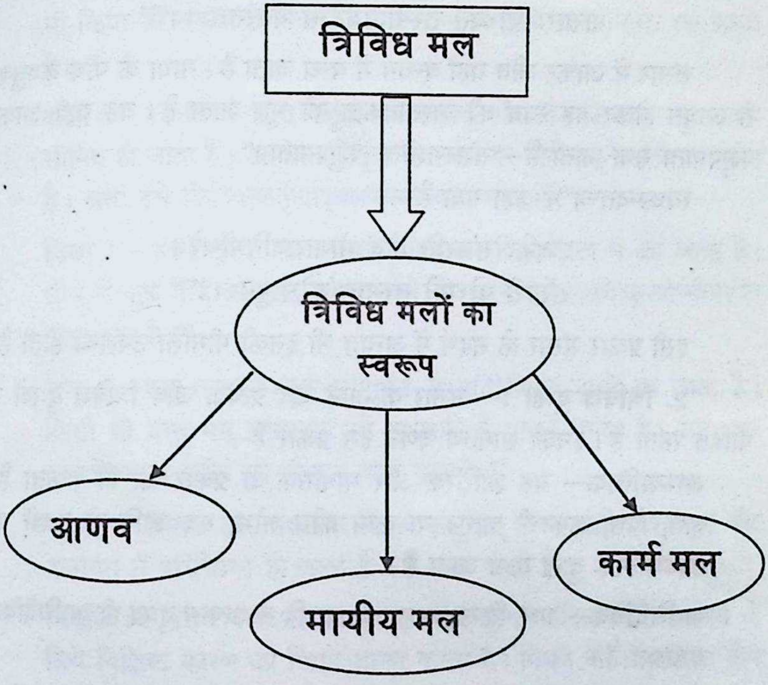

3. आचारमीमांसा का स्वरूप

काश्मीर शैवदर्शन की आचारमीमांसा का में बन्धन, मोक्ष, मुक्ति, भक्ति, साधना आदि का वर्णन मिलता है। यथासमय कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत है।

1. संसार :– "संसरति इति संसारः"। जो स्थिर न हो, जो सदा सरकता रहे या चलता रहे उसे संसार कहते हैं। संसार का अर्थ जीव का एक योनि से दुसरी योनि या एक अवस्था से दुसरी अवस्था में संसरण या भ्रमण करते रहना ही संसार है। काश्मीर शैवदर्शन में संसार का मूल कारण परम् शिव को माना जाता है। वही इस जगत् का कर्ता है। "काश्मीरशैवदर्शनबृहत्कोष" में संसार का अर्थ स्पष्टतया वर्णित है–**"पशुप्रमातुर्जन्ममरणचक्रेषु संसरणम्। तच्च संसरणत्र ब्रह्माण्डान्तः संचलति। तत इदं ब्रह्माण्डमपि संसार इत्युच्यते।"**[57] इसी संदर्भ में "स्वच्छन्दतन्त्रम्" में इसको स्पष्ट करते हे कहा गया है–

"आत्मा संसरति ह्यात्रमायाद्यवनिगोचरे।
संसारः प्रोच्यते तस्मात्पर्यटेत्स यतस्ततः।।"[58]

संसार में आकर जीव यहाँ बन्धन में बन्ध जाता है। माया के पाँच कञ्चुकों से आवृत होकर वह स्वयं की वास्तविकता को भूल जाता है। वह यहाँ आकर पशुप्रमाता बना जाता है–"संसरणशीलः पशुप्रमाता।"

स्वच्छन्दतन्त्र में कहा गया है–

"बद्धः संचरति ह्येवं मायाद्यवनिगोचरे।
संसारी प्रोच्यते तस्मात्संसरेद्यत्पुनः।।"[59]

इसी प्रकार संसार के संदर्भ में अन्यत्र भी इसकी मीमांसा उपलब्ध होती है।

2. त्रिविध दुःख :– संसार के आने बाद प्रत्येक जीव त्रिविध दुःखों से पीडित रहता है। इनका सामान्य वर्णन इस प्रकार है–

आध्यात्मिक– यह शारिरिक और मानसिक दो प्रकार का हो सकता है। वात, पित्त, कफ के कारण या काम क्रोध लोभ, मद आदि के दुःखों को आध्यात्मिक दुःख कहा जाता है।

आधिदैविक– यक्ष, किन्त्र, राक्षश या ग्रहादि से उत्पन्न दुःख ही आधिदैविक कहलाते हैं।

आदिभौतिक– किसी पशु, पक्षी,सर्प या मनुष्य आदि से उत्पन्न दुःख ही आदि भौतिक दुःख कहलाते हैं।

3. माया :– माया विश्व निर्माणकारी या परिमितिकारी तत्त्व है। यह परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति है, जो भेद-दशा का अवभासन करने के कारण माया-शक्ति कहलाती है–**"परमेश्वरस्य भेदावभासने स्वातन्त्र्य तदेवाव्यतिरेकिणि अपूर्णताप्रथनेन मीनाति हिनस्ति इति मायाशक्तिः उच्यते।"[60]** इसे परमेश्वर की स्वरूपगोपनात्मिका इच्छाशक्ति भी कहा गया है।[61] इस अवस्था में विषयी और विषय की एकता नष्ट हो जाती है। यह ईश्वर की दैवी शक्ति है। इसकी दो प्रमुख शक्तियाँ-परानिशा एवं वोमोहनी मानई गई हैं। परानिशा में मायातत्त्व की अभिव्यक्ति तथा अविभक्त भेदावभास की उपदद्या दशा होती है।[62] विमोहनी ईश्वर की वह शक्ति है जिसके द्वारा चिदात्म अपने को परिच्छिन्न या सीमित रूप में कर लेता है। माया को ही विमोहनी कहा गया है।[63] माया का स्वरूप तिरोधानकारी है।[64] इस माया के पाँच कञ्चुक हैं। जिनका सृष्टिप्रक्रिया में विशेष स्थान है।

पञ्चकञ्चुक :– माया के पाँच कञ्चुकों पर एक अन्य शोधपत्र का लेखन भी किया जा सकता है, तथापि इनकी सामान्य दार्शनिक मीमांसा इस प्रकार है।

कला :– इसमें के द्वारा कर्तृत्व का संकोच होता है। शिव का स्वातान्त्र्य सीमित हो जाता है। उसके सर्वकर्तृत्व के स्थान पर किञ्चित् कर्तृत्व आ जाता है। अतः इसे किञ्चित्कर्तृत्वोद्बलनमयी कहा गया है।[65]

विद्या :– इसमें ईश्वर का सर्वज्ञत्व सिमटकर किञ्चिज्ञत्व में आ जाता है। जीव में कुछ वेद्यों का ज्ञान उत्पन्न होने के कारण इसे किंचिज्ज्ञत्वोन्मीनरूपा कहा गया है।[66]

राग :– राग तत्त्व कञ्चुक पूर्णतृप्ति से यत्किञ्चित् भोगों आ जाता है। किसी भी वस्तु मम् समझकर उसे गुणशालिनी मानने लगता है। अतः इस गुणारोपणनय शक्ति को ही राग कहा गया है।[67]

काल :– जिसके द्वारा परमेश्वर नियत्व संकुचित् होकर अतीत, वर्तमान और अनागत में परिच्छिन्न हो जाता है उसे काल कहते हैं।

नियति :– इसमें परमेश्वर का स्वातान्त्र्य संकुचित होकर विशिष्ट कार्य के लिये विशिष्ट कारण का नियम धारण करता है। नियम की नियामिका होने के कारण यह नियति कहलाती है।[68]

4. अज्ञान :– काश्मीर शैवदर्शन में बन्धन का लक्षण अज्ञान और मुक्ति का लक्षण ज्ञान कहा गया है–

"इह तावत् समस्तेषु शास्त्रेषु परिगीयते।
अज्ञानं संसृतेर्मूलं ज्ञानं मोक्षैककारणम्।।"[69]

अज्ञान को काश्मीर शैवदर्शन में ज्ञान का अभाव नहीं माना जाता है। यहाँ ज्ञान के संकोचको अज्ञान कहा जाता है। अज्ञान का कारण माया और मल हैं। माया के कञ्चुक तथा त्रिविध मल जीव के ज्ञान को आवृत कर लेते हैं। अतः वह अज्ञानी होकर संसार के कार्यों में संलग्न हो जाता है। माया के प्रभाव से वह संकुचित होकर स्वयं सर्वज्ञत्व को भूल जाता है। उसमें किञ्चित् कर्तृत्व आ जाता है वह मलों का पात्र बन जाता है। इसका शैवदर्शन में विस्तार से वर्णन मिलता है।

5. ज्ञान :– ज्ञान के स्वरूप का वास्तविक ज्ञान होना शिव का संयोग है। परन्तु ज्ञान और अज्ञान दोनों में शिव की सत्ता विद्यामान रहती है। ज्ञानावस्था में योगी होते हैं। जबकि अज्ञानावस्था में मनुष्य या प्राणी आदि आते हैं। काश्मीरशैवदर्शन

में शिव के साथ संयोग होना ही साधक की अन्तिम अवस्था होती है। इस अवस्था में वह स्वयं को जान लेता है एवं "शिवोऽहम्" की प्रतिति करता है। मैं सर्वज्ञ हूँ, मैं परिपूर्ण हूँ आदि के भावों की अवस्था ही ज्ञान की अवस्था है।

इसके अभ्यास के लिए गुरु का सानिध्य अनिवार्य होता है। वह गुरु उसे त्रिविध मलों से निवृत होने का उपाय बतलाता है। गुरु कृपा से ये मल धुल जाते हैं। "तन्त्रासार" में इसका वर्णन मिलता है—

"दीक्षया गलितेऽप्यन्तरज्ञाने पौरुषात्मनि।
धीगतस्यानिवृत्तत्वाद्विकल्पो हि सम्भवेत्।।

देहसद्भावपर्यन्तमात्मभावो यतो धियि।
देहान्तेऽपि न मोक्षरूस्यात् पौरुषज्ञानहानितः।।"[70]

इसी प्रकार गुरु के सम्पर्क व शक्तिपात् से वह ज्ञान को प्राप्त करता है। परमेश्वर की इच्छाशक्ति ही उसकी स्वातन्त्र्य शक्ति कहलाती है, जिसमें ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति सदैव अभेदरूपता में स्फुरित होती है। अतः आत्मा ज्ञातृ-कर्तृरूप है। प्रत्येक क्रिया का एक कर्ता होता है। ज्ञान एक क्रिया है। इसलिए ज्ञान और क्रिया अभेद हैं। काश्मीर शैवदर्शन में कहा गया है जो ज्ञान है वह क्रिया शून्य नहीं है और जो क्रिया है वह ज्ञान रहित नहीं है।[71]

6. बन्धन :— माया के प्रभाव से स्वयं के ज्ञान का संकोच होना ही बन्धन है। अपने आप को परिमितता, भिन्नत, जडता, पराधीनता, अनीश्वरता आदि का अभिमान करना ही बन्धन का मूल अर्थ है। विश्व की सृष्टि करना और प्रलय होना बन्धन और मुक्ति की कल्पना उसका स्वातन्त्र्य स्वभाव है। इस स्वातन्त्र्य स्वभाव के कारण ही काश्मीर के शैव दार्शनिकों ने उसे पूर्ण स्वतन्त्र आनन्दघन परम ईश्वर कहा है।[72] माया के प्रभाव से जब जीव में संकुचन हो जाता है तब वह बन्धन से युक्त हो जाता है।

7. मुक्ति :— जीव के द्वारा अपने परिपूर्ण परमेश्वरता का पक्का अभिमान होना ही मुक्ति है। अपने परिपूर्ण शिव भाव की पहचान कर लेना ही मुक्ति है। इसको विविध प्रकार से समझा जा सकता है। जैसे—

विदेह मुक्ति :— अशरीर से मुक्त होना ।

आभास मुक्ति :— प्रलयाकल या विज्ञानाकलों की अवस्था को प्राप्त करके उसी अवस्था को मुक्ति समझने वाले प्राणियों की स्थिति ही आभास मुक्ति कहलाती है।

जीवन मुक्ति :– शरीर में रहते हुए और संसार में रहकर लोक व्यवहार करते हुए अपनी स्वातन्त्र्य की अभिव्यक्ति का ज्ञात होना ही जीवन मुक्ति कहलाती है।

मुक्ति (अशरीर) :– जीव के द्वारा अपने परिपूर्ण शिवभाव की पहचान के अनन्तर मर्तृय शरीर को छोध्कर परिपूर्ण शिवभाव में ही ठहरना।

8. शाक्तोपाय :– "तन्त्रालोक" में स्पष्ट कहा है–"भेदोभेदौ शक्तिता।"[73] बाह्य उच्चारण, करण, ध्यांन, वर्ण और स्थान कल्पना और स्थान की कल्पना न होने से अभेदावस्था है और चित्त से इनका चिन्तन होने के कारण विकल्पात्मकता रूप भेद से भी सम्भव है। अतः यहाँ उभयत्व स्वीकार किया जाता है। इसे ज्ञानोपाय भी कहा जाता है।

9. अनुपाय :– काश्मीर शैवदर्शन के उपायों में अनुपाय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके गुरु की कृपा से ही साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। इसका विवेचन इस प्रकार है– यह पूर्णतया अनुग्रह मार्ग पर आधारित है। गुरु कृपा से ही इसमें साधक का मुक्ति का मार्ग परिलक्षित होता है। यह शाम्भवोपाय का चरम रूप है। इसे आनन्दोपाय भी कहा जाता है।

10. उच्चारण योग :– यह प्राणधारणा का प्रकार होता है। इसमें पुरुषत्त्व और पाँच प्राणों की भावना की जाती है और छः आनन्दभूमिकाओं की पहले अनुभूति होती है। उनका नाम क्रमश इस प्रकार है–

निजानन्द :– प्राण धारणा के समय पुरुष तत्त्व पर विश्रान्त हो जाने से जिस आनन्द की अभिव्यक्ति होती है उसे निजानन्द कहते है।[74]

निरानन्द :– इसके बाद उसकी विषयशून्यता की भावना से निरानन्द नामक आनन्द अभिव्यक्त हो जाता है।[75]

परानन्द :– प्राण के उदय होने पर उसी की प्रमेयता के भीतर अपान द्वारा अनन्त प्रमेयों के भरे जाने से प्राण और अपान की विश्रान्ति का अभ्यास करने से परानन्द की अभिव्यक्ति होती है।[76]

ब्रह्मानन्द :– प्रकाशमान हुते हुए भी प्रमेय पदार्थो के एकाकार संघट रूपी प्राण पर विश्रान्ति के अभ्यास से जो आनन्द अभिव्यक्त होता है उसे ब्रह्मानन्द आनन्द कहते हैं।[77]

महानन्दे :– जब साधक प्रमान और प्रमेयों के द्वारा सभी कल्पनाओं को आत्म स्वरूप में विलीन करता हुआ जब उदान नाम क प्राण पर विश्रान्त हो जाता

है। उसे ही महानन्द नामक आनन्द कहा जाता है।[78]

चिदानन्द :– जब साधक उपाधिशून्य, असीम जाध्य शून्य व्यान नामक प्राण पर विश्रान्ति के अभ्यास से चिदानन्द नामक आनन्द की अनुभुति होती है।[79] इनके द्वारा शरीर की पञ्चप्राण वायु का स्पष्टीकरण किया जाता है।

उच्चारणयोग की छः भूमिकाओं का चित्र

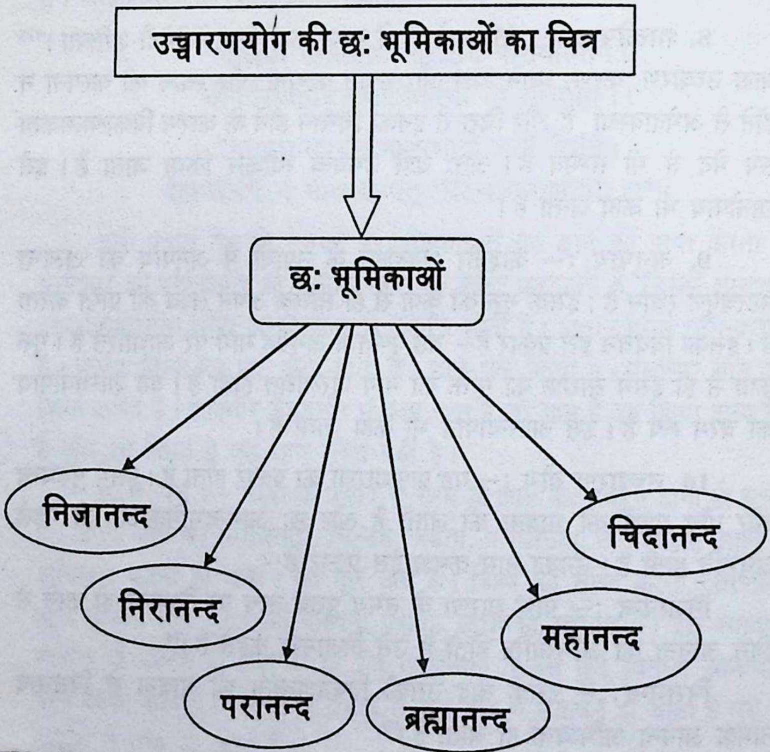

11. करण योग :– शैवीसाधना में देह को धारण करना ही करण योग कहलाता है। इसमें साधक परमेश्वर का साक्षात अनुभव करते हैं। बार बार की अभ्यास से प्राण शक्ति में विचित्र नाद होता है। इसकी अन्तिम अवस्था में साधक शिव के समावेश को प्राप्त करता है।

12. ध्वनियोग :– साधक द्वारा बार बार अभ्यास करने पर सृष्टिबीज और संहारबीज नामक वर्णात्मक ध्वनियों का भी चिन्तन किया जाता है। प्राण शक्ति के प्रभाव से देह के भीतर एक विचित्र नाद होता है। इसमें ध्वनियों का कम्पन होता है। अतः इसे ही काश्मीर शैवदर्शन में ध्वनियोग की संज्ञा दी गई है।

13. स्थानकल्पना :1 काश्मीर शैवदर्शन में अध्यात्मिक तप के बल ही परमतत्त्व को जाना जाता है। इसमें साधक को साधना करती पडती है। इसमें स्वयू एकाग्रचित करने के लिए बाह्य वस्तुओं को आलम्बन बनाकर धारणा की जाती है। यह आणवोपाय में की जाती है। यह आलम्बन युक्त आणव उपाय की धारणा ही स्थानकल्पना कहलाती है। इसमें तीन कार्य अनिवार्य होते हैं। उनका वर्णन इस प्रकार है–

1. सर्वप्रथम प्राणवायु का अभ्यास होता है।
2. स्थूल शरीर शिव का चिन्तन करता है।
3. बाह्य जगत् का परित्याग होता है।

14. षडध्व-धारणा :– आणव उपाय की स्थान कल्पना नामक साधना में धारणा के आलम्बन बनने वाले वर्ण, मन्त्र, पद, कला, तत्त्व और भुवन नामक छः पदार्थ ही षडध्वधारणा कहलाते हैं।

त्रिक शास्त्र की प्रक्रिया के अनुसार दीक्षा प्रदान करते समय शिष्य को शिव से लेकर पृथ्वी तत्त्व पर्यन्त सभी तत्त्वों की महत्वपुर्ण जानकरी प्रदान करवाता है। दीक्षाकाल में प्रायरू गुरु कला का शोधन करता है। उपाय प्रक्रिया में षघ्वधारणा का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

15. नया मार्ग :– काश्मीर शैवदर्शन के छत्तीस तत्त्वों के सूक्ष्म आकार निवृति से लेकर शान्त्यतीता तक की पाँच कालाएँ होती हैं। एक एक कला में कई की भुवन होते हैं। साधक इन तत्त्वों, भुवनों को लेकर धारणा लगाता है। उसी धारणा में परमशिव का अनुभव करता है। इसमें पञ्चदशी, एकादशी, त्रयोदशी, नवमी, सप्तमी आदि विद्याओं का अभ्यास होता है। इससे चित्र, पुस्तक, यन्त्र आदि से स्थानकल्पना के अभ्यास से आलम्बन बनते हैं। यह योग का एक सुगम मार्ग है। आचार्य उत्पलदेव ने इसे सुघट और योग का नया मार्ग कहा है। "ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी" में इसका वर्णन मिलता है।

16.दीक्षा, बाह्य :– दीक्षा गुरु के द्वारा ग्रहण करनी पडती है। इसमें अनेक कार्य किए जाते हैं। यह वर्तमान में भी समाज में प्रचलित है। इसमें शिव की भक्ति

कीं जाती है। इसका स्वरूप इस प्रकारे है–

- रुद्राक्ष धारण करना।
- शिवलिङ्ग पर जल देना।
- रुद्राभिषेक करना।
- शिवस्तोत्र पाठ करना आदि।

इनके द्वारा साधना पथ की सुगमता और अधिक स्वतः बड़ जाती है। नित्यपाठ से इनका स्वयं सिद्ध होना साधक को आनन्द प्रदान करने वाला क्षण होता है।

17. पुजा :– उपरोक्त कार्य पुजा के ही आधार हैं। इन पर विस्तार से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है।

18. साधना :– काश्मीर शैवदर्शन की साधना पद्धति अत्यन्त कठिन है। इसमें गुरु के बिना इसमें साधना करना व्यर्थ ही चला जाता है। इसमें शिव का शक्तिपात् होता है। उसके द्वारा ही साधना में स्थान ग्रहण किया जाता है।

19. शिवभक्ति :– शिव भक्ति के लिए इस दर्शन किसी जाति, लिङ्ग परिवार समाज स्थान से कोई विरोध नहीं है। इसमें शिव का भक्त कोई भी बन सकता है। वह बाह्य पुजा के द्वारा शिवभक्ति कर सकता है। इसमें सामान्य कार्य होते हैं। जैसे–

- शिवलिङ्ग पर जल देना।
- शिवस्तोत्रपाठ करना।
- रुद्राभिषेक करना।
- पुजा में दि[illegible]मन्त्रों का प्रयोग करना। आदि

20. योग :– त्रिक[illegible]र्शन में आणवोपाय से लेकर अनुपाय की अवस्था को योग कहा जाता है। इसमें जीव का शिव के साथ एकत्व को प्राप्त करना ही योग है। इसको प्राप्त करने के जो उपाय इस दर्शन में वर्णित हैं, वह भी योग है। तीनों उपाय योग कहलाते हैं। "तन्त्रासार" में कहा गया है–**"उपादायापि ये हेयास्तानुपायान् प्रचक्षते।"**[80]

।। इति शिवम्।।

संदर्भ ग्रंथ :

1. तन्त्रलोक – 9/1
2. तन्त्रलोक, आ.-1/88
3. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्र-1
4. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्र-2
5. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-2, पृष्ठ संख्या-190
6. अनुत्तरप्रकाशपंचिका, का.-1
7. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-2, पृष्ठ संख्या-116
8. शिवदृष्टि -3/2/3
9. शिवदृष्टि -3/3
10. अनुत्तराख्यं ज्ञानं क्रियात्मकम्। प्रात्रिंशिका विवृति, पृष्ठ संख्या-2
11. नेत्रतन्त्र टीका, भाग-1, पृष्ठ संख्या-9
12. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-2, पृष्ठ संख्या-111
13. पूर्वोक्त।
14. पूर्वोक्त।
15. तन्त्रसार में वर्णित।
16. तन्त्रालोक टीका भाग-6, पृष्ठ संख्या-50
17. तन्त्रालोक, भाग-6, पृष्ठ संख्या-50
18. तन्त्रालोक, भाग- 6, आ.-9/60
19. तन्त्रालोक, आ.- 9/60
20. तन्त्रालोक, टीका, भाग-3 पृष्ठ संख्या- 283
21. मायास्वरूपगोपनात्मिका पारमेश्वरी इच्छाशक्तिः। - वही
22. तन्त्रालोक, भाग -6- 9/150-151
23. माया विमोहनी नाम। विज्ञानभैरव, का.-15
24. तिरोधानकारी मायाभिधा पुनः। ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, भाग-2,-3/1/7
25. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-2, पृष्ठ संख्या- 208
26. पूर्वलिखित
27. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी-भाग—2, पृष्ठ संख्या- 209
28. मालिनीविजयोत्तरतन्त्र-1/29
29. अनुत्तरप्रकाशपञ्चिका, श्लोक-22
30. शिवसूत्रम्-1/2
31. ई.प्र.वि.-भाग- 2- 3/1/10
32. सांख्यकारिका-33
33. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी- 3/1/11
34. तन्त्रालोक विवेक- 9/283
35. तन्त्रालोक विवेक- 9/284
36. तन्त्रालोक विवेक, पृष्ठसंख्या- 9/288

37. तन्त्रालोक विवेक, पृष्ठसंख्या- 9/288
38. तन्त्रालोक, आ.-1/88
39. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्रसंख्या- 2
40. विज्ञानभैरवविवृति, पृष्ठसंख्या- 7
41. शिवदृष्टि, आह्निक -7/122
42. क्षेमराज, विज्ञानभैरवविवृत्तिः पृष्ठसंख्या-7
43. सोमानन्द, शिवदृष्टि, आह्निक-7/122, पृष्ठसंख्या-298
44. काश्मीर शैविजम, पृष्ठसंख्या- 8
45. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृति विमर्शिनी, टवस.3, चंहम-153
46. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृति विमर्शिनी, भाग-3, पृष्ठसंख्या-155
47. तन्त्रसार पृ. 74-75
48. ई. प्र. वि., 3-1-2
49. येन प्रकारेण विद्येश्वरा भगवन्तोऽनन्ताद्या वर्तन्ते। ई. प्र. वि., 3-1-6
50. पूर्वोक्त
51. इति शुद्धोऽध्वा। इयति साक्षात् शिवः कर्ता। तन्त्रसार, पृ. 75
52. मायोर्ध्वे शुद्धविद्याधः सन्ति विज्ञानकेवलाः, परात्रिंशिका विवरण, पृ. 118
53. विज्ञानं बोधात्मकं रूपं केवलं स्वातन्त्र्यविरहितमेषामिति, ई. प्र. वि. 3-2-7
54. ई. प्र. वि. 3-2-7
55. प्रलयेन कृता अकलाः। ई.प्र.वि. 3-1-8
56. देवादीनां च सर्वेषां भविना त्रिविध मलम्। तत्रापि कार्ममेवैकं मुक्यं संसार कारणम्।। ई. प्र.वि. 3-2-10
57. काश्मीर शैवदर्शनबृहत्कोष, भाग-2, पृष्ठसंख्या-726
58. स्वच्छन्दतन्त्रम्, 10/354-355
59. स्वच्छन्दतन्त्रम्, 11/104
60. तन्त्रलोक, टीका, भाग-3 पृष्ठ संख्या- 283
61. मायास्वरूपगोपनात्मिका पारमेश्वरी इच्छाशक्तिः। - वही
62. तन्त्रालोक, भाग-6 - 9/150-151
63. माया विमोहनी नाम। विज्ञानभैरव, का.-15
64. तिरोधानकारी मायाभिधा पुनः। ईश्वरप्रत्यभिज्ञा,भाग-2, -3/1/7
65. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-2, पृष्ठ संख्या- 208
66. पूर्वलिखित
67. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी-भाग-2, पृष्ठ संख्या-209
68. मालिनीविजयोत्तरतन्त्र-1/29
69. काश्मीर शैवदर्शन बृहत्कोष में वर्णित।
70. तन्त्रसार, आह्निक-1/38-39
71. न क्रियारहितं ज्ञानं न ज्ञानरहिता क्रिया। नेत्रतन्त्र उद्योतटीका भाग 2, पृ. 42
72. स भगवान् अनवच्छिन्नप्रकाशानन्दस्वातन्त्र्यपरमार्थो महेश्वरः। ई. प्र. वि., पृ. 14

73. तन्त्रालोक, प्रथम आह्निक्, श्लोकसंख्या-220
74. निजानन्दे प्रमात्रंशमात्रे हृदि पुरा स्थितिः। तन्त्रालोक, पृ. 5 से 44
75. शून्यतामात्रविश्रान्तेर्निरानन्दं विभावयेत्। पूर्वोक्त
76. पूर्वोक्त
77. तन्त्रालोक, 5-64, 47
78. ततोऽपि मानेयौघकलग्रासतत्परः। उदानवह्नौ विश्रान्तो महानन्दं विभावयेत्।। तन्त्रालोक, 47-48
79. पूर्वोक्त
80. तन्त्रासार,आह्निक्-3, पृष्ठसंख्या-46

चतुर्थ अध्याय

शैवदर्शन के प्रमुख सिद्धान्त

भारतीय दार्शनिक परम्परा में प्रत्येक दार्शनिक विधा का अपना प्रसिद्ध सिद्धान्त है। जिसके माध्यम से वह अपने मत का प्रतिपादन करता है। जैसे :–

- सांख्य : सत्कार्यवाद का सिद्धान्त।
- योग : सत्कार्यवाद का सिद्धान्त।
- न्याय : असत्कार्यवाद का सिद्धान्त।
- वैशेषिक : असत्कार्यवाद का सिद्धान्त।
- वेदान्त : विवर्तवाद का सिद्धान्त।
- बौद्ध : शून्यवाद एवं विज्ञानवाद का सिद्धान्त।
- जैन : अनेकान्तवाद का सिद्धान्त।
- चावार्क : देहात्मवाद का सिद्धान्त।

इन सिद्धान्तों के द्वारा प्रत्येक दर्शन का अपना मत सुस्पष्ट एवं सिद्ध होता है। इनमें भी वर्तमान संदर्भ में चावार्क दर्शन का भौतिकवादी सिद्धान्त सर्वत्र परिलक्षित होता है। सांसारिक या व्यवहारिक तथा राजनैतिक, व्यापारिक कार्यों में चार्वाक दर्शन का भौतिकवादी सिद्धान्त सभी प्रयोजनों को सिद्ध करता है। माध्यावाचार्य द्वारा रचित "सर्वदर्शनसंग्रह" में सभी दर्शनों के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। काश्मीर शैवदर्शन की दृष्टि सभी दर्शनों के सिद्धान्त साधना पथ मार्ग में सत्य को सिद्ध करते हैं। इस क्रम में काश्मीर शैवदर्शन में भी अनेक सिद्धान्तों को शैवाचार्यों ने स्वीकार किया है। जबकि प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में स्पष्ट कहा गया है–**"तद् भूमिकाः सर्वदर्शनस्थितयः"** अर्थात् सम्पूर्ण दर्शनों की स्थितियाँ ही उसकी भूमिकायें हैं।[1] इतना कहने के बाद कुछ शेष नहीं रहता है। तथापि इस दर्शन में आभासवाद, स्वातन्त्र्यवाद एवं शिवाद्वयवाद आदि को प्रमुख माना जाता है। इनके विषय में आचार्यों के मतानुसार काश्मीर ग्रन्थों में वर्णन मिलता है।

इनके अतिरिक्त आचार्य सोमानन्द ने "प्रत्यभिज्ञा" के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इन्होंने काश्मीर शैवदर्शन के मूल सिद्धान्तों का शिवदृष्टि ग्रन्थ में स्पष्टीकरण किया है। सामान्यतः द्वितीयक ग्रन्थों में उपलब्ध कुछ सिद्धान्तों का यहाँ सारांश रूप में वर्णन किया गया है।

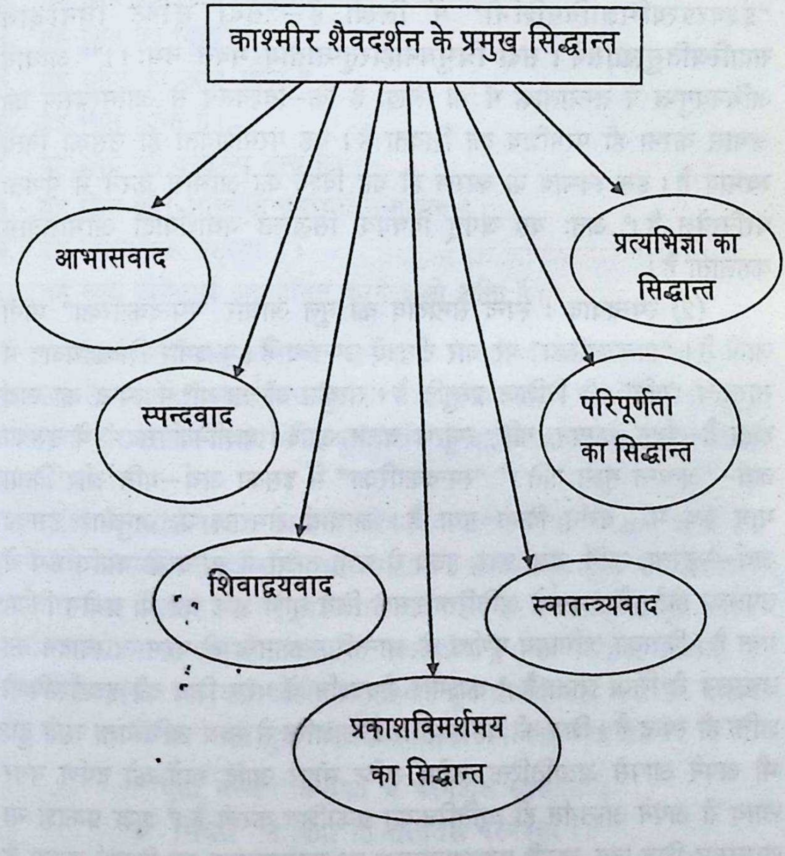

(1) आभासवाद : काश्मीर शैवदर्शन का प्रमुख सिद्धान्त आभासवाद माना जाता है। इसमें जगत् को मिथ्या न मानकर पूर्णरूप से यथार्थ माना गया है। जे. सी.चटर्जी के अनुसार दर्शन की दृष्टि से यह सृष्टि महेश्वर का स्वातन्त्र्य है, उसकी अभिव्यक्ति है या आविर्भाव की दृष्टि से उसका आविर्भाव है। सारा जगत् पूर्ण संवित् का संकुचित् प्रकाशन मात्र है। परमशिव और जगत् का सम्बन्ध दर्पण प्रतिबिम्ब के समान है। इस प्रकार यह शुद्ध संवित् स्वरूप परम शिव में प्रतिबिम्बित

निखिल जगत् से अभिन्न होते हुए भी घटपाटादि में भिन्नवत् परिलक्षित होता है।[2] आभास परमेश्वर की कल्पनाओं का बर्हि प्रक्षेप मात्र है।[3] परमेश्वरता शक्ति का यह आभास ह्री परमेश्वर का स्वात्म विनोदन है और उसकी यह आभास लीला (विश्वलीला) ही जीवों के लिये परमशिव की सत्ता का द्योतक है। अतैव "ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी" में लिखा है—**"सदा सृष्टि विनोदाय सदास्थितिसुखासिने। सदा त्रिभुवनाहारतृप्ताताय भवते नमः।।"**[4] आचार्य अभिनवगुप्त ने तन्त्रालोक में भी लिखा है कि—विश्वरूप से आत्मस्वरूप का अभास करना ही परमशिव की शिवता है। यह परमशिवता ही उसका नित्य स्वभाव है। इस स्वभाव के कारण ही वह विश्व का आभास करने में पूर्णतः परनिरपेक्ष है।[5] अतः यह जगत् विषयक सिद्धान्त यथार्थवादी आभासवास कहलाता है।

(2) स्पन्दवाद : स्पन्द सम्प्रदाय का मूल आधार "स्पन्दकारिका" मानी जाती है। "स्पन्दकारिका" पर चार टीकाएँ उपलब्ध् हैं। काश्मीर शिवाद्वयवाद में सारतत्त्व "गति" की विशिष्ट प्रस्तुति है। संस्कृत कोशग्रन्थों[6] में स्पन्द का अर्थ होता है—ईषत्, कम्पन, गति, स्फुरण चलन आदि। दार्शनिक संदर्भ में इसका अर्थ—"अत्यन्त सूक्ष्म गति।" "स्पन्दकारिका" में इसका अर्थ—गति और क्रिया मात्र रूप में वर्णन किया गया है। आचार्य क्षेमराज के अनुसार इसका अर्थ—स्फुरता, ऊर्मि, बल, सार, हृदय ये सभी तन्त्रों में स्पन्द के पर्याय रूप में उपलब्ध होते हैं।[7] इसके अतिरिक्त इसके लिये घूर्णि शब्द कां भी प्रयोग किया गया है। जिसका अभिप्राय पूर्णता के आन्तरिक आनन्द के परम आस्वादन का उच्छलन से लिया जाता है।[8] काश्मीर शैवदर्शन में परम शिव की इच्छारूपिणी शक्ति ही स्पन्द है। शिव की यह स्वतन्त्र इच्छाशक्ति से स्वयं अभिव्यक्त रहते हुए भी अपने आपसे अव्यतिरिक्त अशेष सृष्टि संहार आदि रूपों को दर्पण नगर न्याय से अपने अन्तर्गत ही व्यतिरिक्तवत् प्रकाशित करती है।[9] शुद्ध प्रकाश या ज्ञास्वरूप शिव जब अपनी प्रकाशात्मकता या ज्ञानात्मकता का विमर्श करता है तो वह विमर्श ही स्पन्द कहलाता है। एक साथ अपने अन्तर्गत विश्व का उन्मेष और निमेष करने वाली इस पारमेश्वरी इच्छाशक्ति को ही स्पन्दशास्त्र में स्पन्द कहा गया है। "स्पन्दनिर्णय" में लिखा है—**"सा सैषा स्पन्दशक्ति-युगपदेवोन्मेषनिमेषमयी।"** यह एक होकर भी अनेकरूपता को ग्रहण कर लेता है। इसकी अनन्त शक्तियाँ मानी जाती है। इनमें भी पाँच शक्तियाँ प्रमुख मानी जाती है। जिसमें चित्त,आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया की गणना की जाती है।

स्पन्दवाद सिद्धान्त के प्रमुख बिन्दु

1. शिव का हृदय स्पन्द है।
2. यह शिवात्मा विन्दु है।
3. यह शिव की स्वातन्त्र्य शक्ति है।
4. यह शिव का विमर्श है।
5. यह सृष्टि का आद्य स्पन्द है।
6. यह चित् शक्ति है।
7. यह शिव का कार्यरूप तत्त्व है।
8. यह शिव और शक्ति के प्रसारार्थ उन्मुखता है।
9. यह विश्वात्मक स्फुरणा है।
10. यह स्वयं अनेकार्थ अवभासित करने वाली शक्ति है।

आचार्य अभिनवगुप्त ने भी "तन्त्रसार" में शक्तिपञ्चक की परिभाषा देते हुए कहा है–"प्रकाशरूपता चिच्छक्तिः।"[10] यह प्रकाशरूपता परम शिव की शुद्ध संविद्रूपता है। इसके विषय में सम्पूर्ण दर्शन के दार्शनिक पक्ष पर विचार किया जाता है।

(3) शिवाद्वयवाद : काश्मीर शैवदर्शन अनेक नामों से जाना जाता है। इसमें उसे आध्यात्मिक दर्शन भी कहा जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि यह अद्वैतवादी दर्शन है। इसमें जगत् का मूल कारण परमशिव को माना गया है। यह एक तत्त्वविशेष है। यह विशिष्ट शक्तियों से सम्पन्न है। संसार को यहाँ असत्य न कहकर पूर्ण यथार्थ कहा गया है। बन्धन और मोक्ष का विचार करते हुए "बोधपञ्चदशिका" में कहा गया है–

"एतौ बन्ध विमोक्षो च परमेशरू स्वरूपतः।
न भिद्यते न भेदो हि तत्त्वतरू परमेश्वरे।।"[11]

इस संसार पर जितनी भी वस्तुएँ उपलब्ध हैं। वे सभी शिव के कारण हैं। संसार की तुच्छ वस्तु भी उतनी ही मात्रा में शिव है, जितनी मात्र में शिव है। "तन्त्रालोक" में संसार का स्पष्ट वर्णन करते हुए कहा गया है–

अस्यां भूमौ सुखं दुःखं बन्धो मोक्षशिचितिर्जडः।
घटकुम्भवदेकाथारू शब्दास्ते व्येकमेव च।।[12]

अर्थात् इस संसार में सभी वस्तुओं में शिव विद्यमान है। इस ज्ञान को जानने ले लिये शैवी साधना का अभ्यास करना पडता है।

ऐसी अवस्था प्राप्त होने पर सर्वत्र शिव ही दिखाई देते हैं। जीव को भी परम शिव के रूप में देखा जाता है।[13] आचार्य अभिनवगुप्त ने इसे पराद्वैत कहा है।

(4) प्रकाशविमर्शमय का सिद्धान्त : काश्मीर शैवदर्शन में शिव को प्रकाश विमर्श रूप कहा गया है। ये एक दुसरे से सर्वथा अभिन्न हैं। एक के अभाव में दुसरे की कल्पना करना असम्भव है। इनमें अविनाभाव सम्बन्ध है। विज्ञानभैरव विवृति में भी कहा गया है—**"प्रकाशमानं न पृथक् प्रकाशात्। स च प्रकाशो न पृथग् विमर्शात्।"**[14] प्रकाश शिव (आत्मा) का स्वरूप है और विमर्श प्रकाशरूप परमात्मा के स्वरूप के प्रतीति शिवरूप प्रकाशरूप है।[15] प्रकाश का स्वभाव विमर्श होता है। जिस किसी को भी अपना प्रकाश अर्थात् अपना आभास होता है, उसे साथ ही साथ अपने अस्तित्व की प्रतीति भी होती रहती है।

विमर्श शब्द वि+मृश् (आमर्शने)+घञ् से निष्पन्न होता है, जिसका सामान्य अर्थ है विचार करने का सामर्थ्य तथा चौतन्य का अनिवार्य लक्षण इसी को माना जाता है। काश्मीर शैवदर्शन में विमर्श का अभिप्राय प्राय संवेदन से लिया जाता है। परमेश्वर भी शुद्ध प्रकाश रूप होता हुआ शुद्ध विमर्श भी है। अतः उसे अपनी असीम शुद्ध और परिपूर्ण चेतना की सत्ता का विमर्श और प्रकाश दोनों ही सदा होते रहते हैं। विमर्श वस्तुतः प्रकाश से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। वह प्रकाश का नैसर्गिक स्वभाव है। इस विमर्शात्मक स्वभाव के कारण प्रकाश को प्रकाश कहते हैं। अर्थात् प्रकाश की प्रकाशता का विमर्श है।

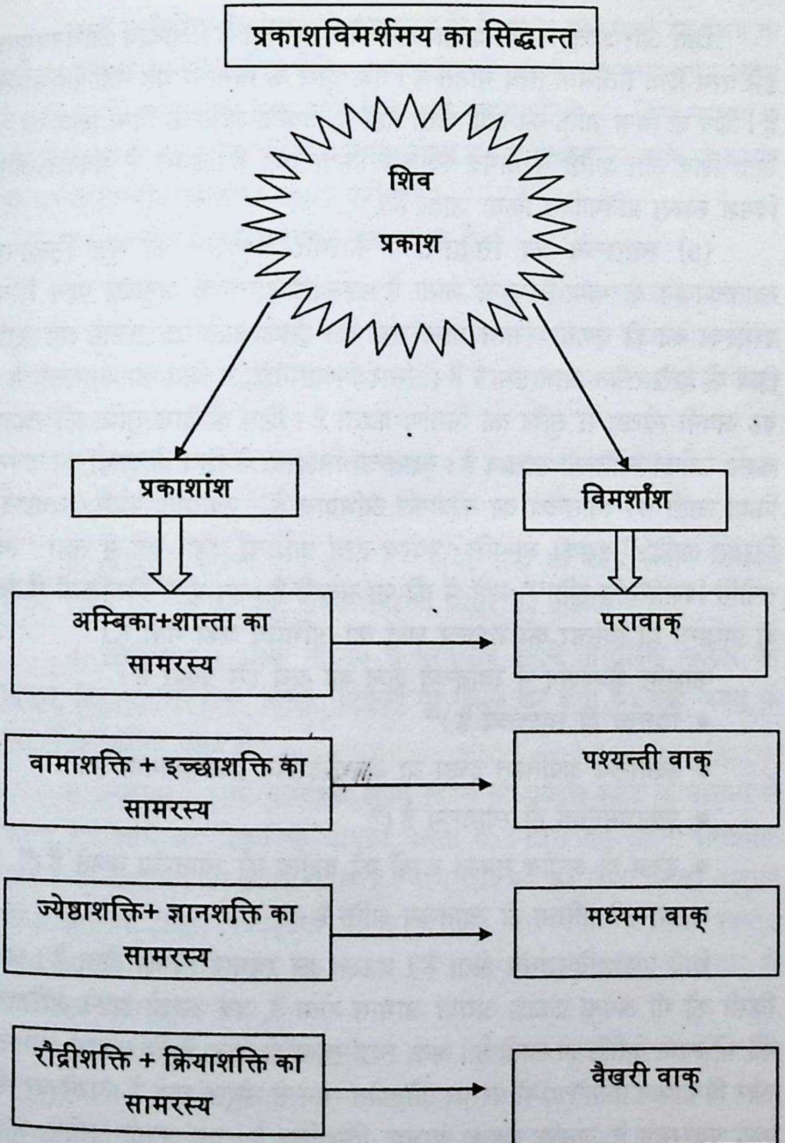

"ईश्वरप्रत्यभिज्ञा" में स्पष्ट कहा गया है–

स्वभावमवभासस्य विमर्शविदुरन्यथा।
प्रकाशोऽर्थोपरक्तोऽपि स्पटिकादिजडोपमः।।[16]

शिव और शक्ति का नित्य सामरस्य ही परम शिव है। आचार्य अभिनवगुप्त इसे परम शिव सैतीसवाँ तत्त्व मानते हैं। एक दुसरे के बिना ये यह नहीं रह सकते हैं। शिव के विना शक्ति की कोई सत्ता नहीं है, जबकि शक्ति के बिना शिव की । अतः शिव और शक्ति में अभेद स्वीकार किया गया है। इनसे से प्रकाश और विमर्श स्वरूप प्रतिपादित किया जाता है।

(5) स्वातन्त्र्य का सिद्धान्त : काश्मीर शैवदर्शन का मूल सिद्धान्त स्वातन्त्र्यवाद के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार परम शिव परमेश्वर को ही एकमात्र सत्य माना गया है। इसके अतिरिक्त संसार सब कुछ शिव के द्वारा रचित आभासमात्र है। संसार मिथ्या नही, न शिव का स्वातन्त्र्य है। वह अपनी स्वेच्छा से सृष्टि का निर्माण करता है। शिव के द्वारा सृष्टि की रचना करना उसका स्वातन्त्र्य स्वभाव है। स्वातन्त्र्य सिद्धान्त में शिव के कृत्यों का वर्णन किया जाता है। स्वातन्त्र्य का कोशगत अभिप्राय है– स्वाधीन, स्वैरी, स्वच्छन्द, निरग्रह आदि।[17] इसकी व्युत्पत्ति ''स्वस्य तन्त्रं प्राधान्यं यत्र'' रूप में तथा ''स्वं तनोति विस्तारयति इति''[18] रूपों में की जा सकती है। इन दोनों निरुक्तियों में स्व के प्राधान्य या विस्तार को स्वतन्त्र शब्द का अभिधेय कहा गया है।

काश्मीर शैवदर्शन में स्वातन्त्र्य शब्द का अर्थ इस प्रकार है।

- चित्तत्त्व ही स्वातन्त्र्य है।[19]
- स्वातन्त्र्य अप्रतिहत इच्छा या अवच्छेदरहित प्रकाशमानता है।[20]
- प्रकाशमानता ही स्वातन्त्र्य है।[21]
- इच्छा के अधीन समस्त कार्यों को कर्तृत्व को स्वातन्त्र्य कहते हैं।[22]
- आन्तरी प्रतिभा ही स्वातन्त्र्य शक्ति है।[23]

शिव प्रकाशविमर्शमय होता है। प्रकाश का स्वभाव विमर्श होता है। जब किसी को भी अपना प्रकाश अथवा आभास होता है, तब उसको अपने अस्तित्त्व की भी स्पष्ट प्रतीति हो जाती है। अतः स्वयं स्पष्ट हो जाता है कि प्रकाश आभास और विमर्शरूप प्रतिति दोनों परस्पर औतप्रोत भाव से संयुक्त रहते हैं। परमेश्वर भी शुद्ध प्रकाररूप है, जबकि उसका स्वभाव विमर्शरूप है। वह अपनी असीम, शुद्ध और परिपूर्ण चेतना की सत्त का विमर्श और प्रकाश दोनों ही सदा होते रहते हैं। वस्तुतः विमर्श प्रकाश से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। वह तो प्रकाश का नैसर्गिक स्वभाव है। इस विमर्शात्मक स्वभाव के कारण ही प्रकाश को प्रकाश कहते हैं, अर्थात् प्रकाश की प्रकाशता विमर्श ही है।[24]

इसके अतिरिक्त शैवदर्शन के स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त को जानने हेतु शिव के पञ्चकृत्यों का जानना अनिवार्य है। इसके द्वारा ही उसकी स्वातन्त्र्य स्पष्ट जोता है। शिव के पञ्चकृत्यों द्वारा सारे विश्व की रचना होती है। शिव स्वभावतः पंचकृत्यकारी है, जो सदैव पंचकृत्य करता रहता है। यह स्वातन्त्र्य शक्ति के कारण ही पञ्चकृत्यरूपी महालीला धारण करता है।

इन पञ्चकृत्यों का लघुवर्णन इस प्रकार है

1. सृष्टि : इसमें परमशिव अपने भीतर से सबकुछ बाहर अभिव्यक्त कर देता है। सृष्टि शिव का वैभव है जिसे वह बिखेर देता है। इससे स्पष्ट होता है कि वह जगत् का उपादान और निमित्त कारण दोनों हैं। केवल उसकी शक्ति ही जगत् रूप में आभासित होती है।

2. स्थिति : सृष्टि के अनन्तर जगत् का ठहराव और नियमपूर्वक उसका पालन ही स्थिति है।

3. संहार : इसका अर्थ होता है– समेट लेना या बटोर लेना। जिसका सर्जन किया था, उसको पुनः समेट लेना ही संसार की प्रक्रिया है।

4. तिरोधान : इसके माध्यम से परमशिव अपने वास्तविक स्वरूप का विलय, विधान, तिरोधान, निग्रह, आवरण या गोपन कर लेता है। पुनः जगत् के रूप में आभासित होता है।

5. अनुग्रह : इसमें परमशिव अपने स्वरूप का प्रकाश शक्ति के माध्यम से करता है। इसमें वह शिष्य पर अनुग्रह करता है, जिससे वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानने का प्रयास करता है। परम शिव की यह लीला उसकी अनुग्रह लीला है। इस प्रकार पञ्चकृत्यों को करना शिव का स्वभाव है। यह स्वभाव स्वातन्त्र्य ही शिव की सत्ता का प्रमाण है।[25] सम्पूर्ण सृष्टि शिव की इच्छा से प्रकाशित होती रहती है।

(6) परिपूर्णता का सिद्धान्त : परम शिव का सदा परिपूर्ण होना ही परिपूर्णता है। काश्मीर शैवदर्शन में परम शिव को परिपूर्ण माना गया है। वह स्वेच्छा से विश्व की रचना करता है। इसे ही परमकारण कहा गया है–"शिव परमकारणम्" ।[26] इसे अनुत्तर तत्त्व भी कहा जाता है। यह सदैव दो भाव विश्वमय और विश्वोतीर्ण में रहता है। इस चित् की शक्ति चित्ति हैं– "चितिः स्वतन्त्रता विश्वसिद्धिहेतुः" ।[27] यह अपनी स्वेच्छा से विश्व का निर्माण करता है– "स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति" ।[28] इसको अनेक नामों से जाना जाता है। इसे परमेश्वर,

परा संवित् या परमशिव आदि कहा जाता है। यह तत्त्व संसार की हर जड़ और चेतन में विद्यमान है। यह नित्य और अनन्त है। यही तत्त्व प्रकाश और विमर्श के स्वातन्त्र्य-रूप से भासमान होने के कारण शिवतत्त्व कहा जाता है।[29] यह परम शिव कभी सदा सर्वथा संविद्रूप ही रहता है। वह जड़ वस्तुओं के आकार मे रहता हु भी संविद्रूप ही रहता है। जड़ वस्तु की सत्ता भी तभी सिद्ध होती है जब चेतन प्राणी के संवित् के भीतर उसका आभास हो। इसके विषय में "ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका" में कहा गया है–

"स्वस्वभावस्य विमर्श विदुरन्यथा।
प्रकाशोऽर्थपरक्तोऽपि स्फटिकादिजड़ोयमः"[30]

चेतन प्राणी की संवित् में अवभासित होता हुआ जड़ पदार्थ भी आभास क्षण में चेतन ही होता है। क्योंकि संवित् ही उस जड पदार्थ के रूप को धारण करते हुई अवभासित होती है। यदि ऐसा न होता तो जड़ का आभास होता ही नहीं।[31] देशकृत, कालकृत और आकारकृत कोई भी संकोच उस अनुत्तर संवित् में नहीं होता है।

उसी संवित् के स्पन्दन से देश का तथा काल और आकारों का अवभास होता है। इस प्रकार से परम शिव सदा सर्वदा सर्वतः और सर्वथा असीम है। वह सदा परिपूर्ण है। जगत् की रचना करना उसकी स्वेच्छा है। प्रमाता, प्रमेय या प्रमाण से जो कुछ भी अवभासित होता है, वह सम्पूर्णतया उस शुद्ध संवित् के भीतर सदैव विद्यमान रहता है।[32] अतः परम शिव शुद्ध असीम और परिपूर्ण है।

(8) प्रत्यभिज्ञा का सिद्धान्त : काश्मीर शैवदर्शन को अनेक नामों से जाना जाता है। इसको आगम दर्शन, स्पन्द दर्शन, त्रिक दर्शन एवं प्रत्यभिज्ञा दर्शन कहा जाता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन का प्रतिष्ठापक आचार्च सोमानन्द को माना जाता है। आचार्य सोमानन्द की आचार्य त्रयी में गणना की जाती है। "सर्वदर्शनसंग्रह" में माध्वाचार्य ने काश्मीर शैवदर्शन को प्रत्यभिज्ञादर्शन के नाम से अभिहित किया गया है। सोमानन्द लोकोत्तर प्रतिभा के धनी आचार्य थे। इनका समय नवी शताब्दी के आस पास माना जाता है।[33] प्रत्यभिज्ञादर्शन नामकरण से ही प्रत्यभिज्ञा का सिद्धान्त प्रचलित हुआ। प्रत्यभिज्ञा शब्द का सामान्य अर्थ है– पहचान करना।

संसार में आने के बाद जीव अपने स्वरूप को भूल जाता है। उसकी पहचान करना ही प्रत्यभिज्ञा है। इसमें प्रति+अभि+ज्ञा तीन शब्द हैं। जिसमें प्रति का अर्थ

है—प्रतीप(प्रतिकूल), अभि का अर्थ है— अभिमुख रूप से या आमने सामने या स्फुटरूप से तथा ज्ञा का अर्थ है— ज्ञान या प्रकाश। अतः स्पष्ट होता है कि ज्ञात होने पर भी विस्मृत तत्त्व का ज्ञान होना ही प्रत्यभिज्ञा है।

आचार्य अभिनवगुप्त ने 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' में कहा है— ''प्रतीपमात्माभिमुख्येन ज्ञानं प्रकाशः प्रत्यभिज्ञा''[34] अर्थात् प्रति-प्रतीप अर्थात् ज्ञात होने पर भी मोहवश विस्मृत तत्त्व का, अभि-अभिमुख रूप से, स्फुटता जो ज्ञा-ज्ञान अर्थात् प्रकाश है उसे प्रत्यभिज्ञा के नाम से जाना जाता है।

संसार में आने के बाद जीव माया के पाँच कञ्चुकों से आवृत हो जाता है। वह स्वयं के वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है। स्वयं की पहचान करना ही प्रत्यभिज्ञा है। स्वयं को शिवमय जान लेना या स्वयं को यह ज्ञान होना कि ''मैं शिव हूँ।'' यही प्रत्यभिज्ञा का सिद्धान्त है। आचार्य क्षेमराज ने ''प्रत्यभिज्ञा'' को स्पष्ट करने हेतु ''प्रत्यभिज्ञाहृदयम्'' ग्रन्थ की रचना की। इसमें बीस सूत्रों में जीव एवं जगत् के वास्तविक स्वरूप का विस्तार से विवेचन किया गया है। संसारगत जीव को स्वयं का अवभास करवाने के लिये शिव अपनी स्वेच्छा से सृष्टि का चिति शक्ति द्वारा स्वात्मरूप भित्ति में विश्व का उन्मीलन करती है— ''स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति''।[35]

इस प्रकार से काश्मीर शैवदर्शन में शिव शक्तिवाद का सिद्धान्त भी परिलक्षित होता है। इसमें शिव की शक्तियों का आविर्भाव एवं उनके कार्य का विवेच्न किया जाता है। कतिपय आचार्यों ने इसको शक्तिवाद का सिद्धान्त भी कहा है। इस सिद्धान्त में शिव की पाँच शक्तियों का वर्णन किया गया है। इनका सामान्य परिचय इस प्रकार है।

शिव की पाँच शक्तियाँ

1. चित् शक्ति : काश्मीर शैवदर्शन के सुप्रसिद्ध आचार्य श्रीमद् अभिनवगुप्त ने तन्त्रसार ग्रन्थ में शक्तिपञ्चक सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए कहा है— चिदात्मा की प्रकाशरूपता ही उसकी चित् शक्ति है।[36] यह परमशिव की शुद्ध संविद् रूपता है। इसकी प्रकाशरूपता से ही शिव सर्वत्र प्रकाशित होता है। इसके प्रकाश रूप आश्रय में विश्व के समस्त तत्त्वों का प्रकाशन होता है।

आत्मा की इस प्रकासरूपता को ईश्वरप्रत्यभिज्ञा में सर्व व्याप्त बताया गया है। प्रकाशरूप आत्मा का इच्छास्फुरण जगत् भी प्रकाशरूप ही है।[37]

परम शिव के प्रकाशरूप न होने पर संसार में किसी भी वस्तु का ज्ञान नहीं होगा। सर्वत्र अंधकार हो जायेगा।[38] अतः आत्मा की प्रकाशरूपता ही सर्वत्र

अभेदरूप से अनुस्यूत है और अप्रकाशरूपता की कुत्रापि सत्ता नहीं है।[39] अतः शिव की चित् शक्ति का चिदात्मा में विशिष्ट योगदान है।

2. आनन्दशक्ति : आनन्दशक्ति के द्वारा शिव आनन्दमय हो जाता है। इसे स्वातन्त्र्य भी कहा जाता है। उसका आनन्द अपने आप में विश्रान्त न होकर दूसरे की अपेक्षा पर आश्रित है। जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहकता को अलग करना कठिन है या अभेद उसी प्रकार प्रकाश और विमर्श में भेद सदा अचिन्त्य है। विमर्श चौतन्य आत्मा के प्रकाशरूप की प्रतिति है। यह विमर्श शिव का स्वातन्त्र्य है, जिससे वह पर निरपेक्ष होकर स्वात्ममात्र की पूर्णता में विश्रान्त रहता है।

यह प्रतिति ही उसका आनन्द है। जबकि संसार में रहने वाले भोक्ता को भोग्य की अपेक्षा होती है, यतोहि वह अपूर्ण होता है। उसको आनन्द लेने लिये पर की अपेक्षा करनी पड़ती है। उसका आनन्द दूसरों पर आश्रित है। जबकि शिव से भिन्न तो इस संसार में कुछ भी नहीं है। स्वतन्त्र का पूर्ण विमर्श ही स्वातन्त्र्य है और यह स्वातन्त्र्य ही परम शिव का आनन्द है या उसकी आनन्द शक्ति है।

3. इच्छाशक्ति : इच्छा शक्ति शिव की स्वेच्छा है। विश्व की सृष्टि करने की इच्छा जागृत होने पर वह अत्यन्त सूक्ष्म अभिलाषमात्र की उन्मुखता ही ही इच्छा कही जाती है।[40] इसके माध्यम से ही वह ज्ञातृ-ज्ञान ज्ञेय रूपों में आत्म अवभासन की इच्छा करता है। इसको ही परमेश्वर की इच्छाशक्ति कहा गया है।[41] आचार्य अभिनवगुप्त ने परम शिव के स्वभाव ऐश्वर्य (आनन्द) के चमत्कार को इच्छाशक्ति बताया है।[42] इससे ही वह का आत्म अवभासन की इच्छा करता है।

4. ज्ञानशक्ति : शिव की इच्छा शक्ति जव विकसिता का रूप धारण करके विश्वरूपी कार्य प्रकाशन की शक्ति बनती है। इसको ही ज्ञानशक्ति कहा जाता है।[43] परमशिव स्वयं ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञानस्वभाव है। इस प्रकार ज्ञातृ-ज्ञेयरूपों का अवभासन करके जो शक्ति ज्ञान करवाती है, उसे ज्ञानशक्ति कहते है।[44] तन्त्रसार में स्पष्ट कहा गया है– चिदात्मा की इच्छाशक्ति जब वेद्योन्मुखी होती है, तब उसे ज्ञानशक्ति कहा जाता है।[45] इसमें वेद्योन्मुखता होती है, जिससे जगत् का सम्पूर्ण ज्ञान स्पष्ट हो जाता है।

5. क्रियाशक्ति : परमेश्वर की क्रियाशक्ति अनेक रूपों को धारण करती है। यह यथाक्रम सृष्टि के लिये नानारूपों को धारण करके असंख्य आभासरूपों को अपने अन्तर्गत प्रकाशित करती है।[46] यह समस्त विश्वाभास क्रियाशक्ति का ही

रूप है।[47] संसार की प्रत्येक वस्तु इससे क्रियान्वित है। इन पञ्चशक्तियों से शक्तियुक्त होने से परमशिव विश्व का अवभासन करता है।

इनमें इच्छा, ज्ञान और क्रियाशक्ति ही प्रमुख हैं। इस प्रकार से काश्मीर शैवदर्शन के सभी सिद्धान्त परिपूर्ण हैं। इनमें किसी भी अन्य दार्शनिक सिद्धान्त का खण्ड़न नहीं किया गया है।

चित्र :— शिव की पाँच शक्तियाँ

शिव के पञ्चकृत्यों द्वारा सृष्टिप्रक्रिया

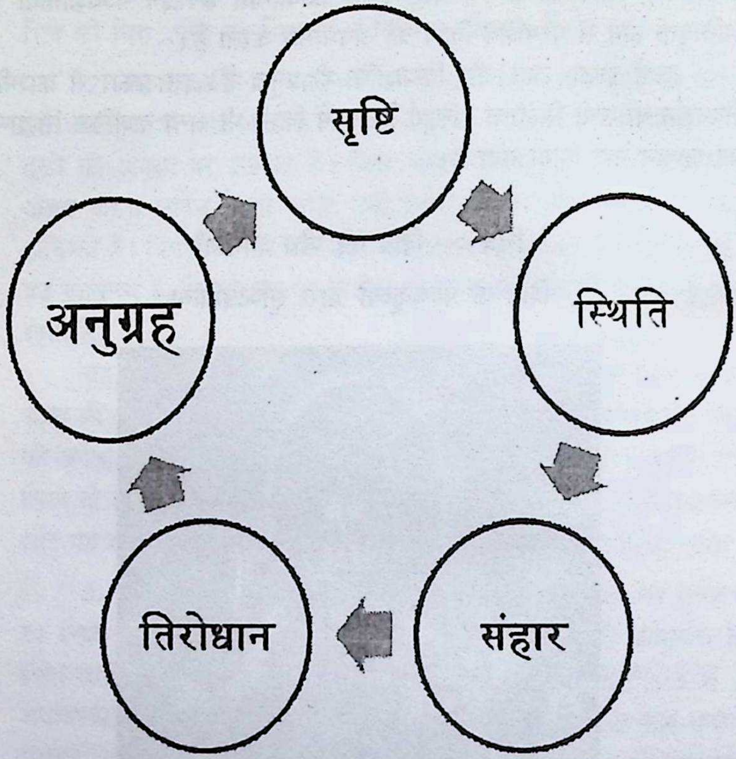

इस प्रकार से काश्मीर शैवदर्शन में विविध सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। इनमें भी प्रत्यभिज्ञा का सिद्धान्त सर्वाधिक प्रसिद्ध माना है। इसके सामान्य अर्थ में कहा जाता है– स्वयं की पहचान करना ही प्रत्यभिज्ञा है। काश्मीर शैवदर्शन के ग्रन्थों में इस सभी सिद्धान्तों का वर्णन पदे पदे मिलता है। शिवाद्वयवाद का सिद्धान्त पूर्णतः शिव और शक्ति की अद्वैतता को सिद्ध करता है।

।। इति शिवम् ।।

संदर्भ ग्रंथ :

1. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्र सं. 8
2. तन्त्रालोक-3/4
3. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका-1/5/7
4. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-1, पृष्ठसंख्या -195
5. तन्त्रालोक, भाग-9, आह्निक्-15/265-66
6. शब्दकल्पद्रुम, भाग-5, पृष्ठसंख्या-457, वाचस्पत्यम्, भाग -5, पृष्ठसंख्या- 366
7. स्पन्दसन्दोह, पृष्ठसंख्या-5
8. शिवदृष्टि, पृष्ठसंख्या-10, शिवस्तोत्रावली-13/15
9. स्पन्दनिर्णय, पृष्ठसंख्या-3
10. तन्त्रसार, पृष्ठसंख्या-21
11. बोधपञ्चदशिका-4
12. तन्त्रालोक -2/9
13. मालिनीविजयवार्तिक- 1/123
14. विज्ञानभैरवविवृति, पृष्ठसंख्या- 122
15. स एव विमर्शत्वेन नित्येन महेश्वरः ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, भाग-1, 1/8/11
16. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-1/5/11
17. शब्दकल्पद्रुम, भाग-5, पृष्ठसंख्या-468
18. शब्दकल्पद्रुम, भाग-5, पृष्ठसंख्या-468
19. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शनीविवृति, भाग -1, पृष्ठसंख्या-51
20. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शनीविवृति, भाग -1, पृष्ठसंख्या-37
21. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शनीविवृति, भाग -1, पृष्ठसंख्या-48
22. स्पन्दकारिकावृति, पृष्ठसंख्या-33
23. तन्त्रालोकविवेक, भाग-2, पृष्ठसंख्या-108-109
24. स्वभावमवभासस्य विमर्शवुदुरन्यथा। प्रकाशोऽर्थोपरक्तोऽपि स्फटिकादिजड़ोपमः।। ई.प्र.-1. 5.11
25. तन्त्रालोक, भाग-2, आह्निक्-3/100-101
26. तन्त्रालोक, आ.-1/88
27. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्र-1
28. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्र-2
29. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-2, पृष्ठ संख्या-190
30. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका- 1/511
31. अ.प्र.सि.का-13
32. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी-1/6/7
33. An Historical and Philosophical Study, Abhinava Gupta, Page-161
34. ई.प्र.वि.1/1/1 पृ.सं.-12
35. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्र सं., 2

36. तन्त्रसार, आह्निक् - 1, पृ. 73
37. प्रकाशात्मा प्रकाश्योऽर्थो। ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, भाग- 1 - 1/5/3
38. प्रकाशमानता स्वात्मन्यपि वा न स्यात् इति अन्धता जगतः। ई.प्र.वि. भाग-1 पृ. 115
39. ई.प्र.वि. भाग-1, 1/5/3
40. शिवदृष्टि, 1/7-8
41. तच्चमत्कार इच्छाशक्तिः। तन्त्रसार, पृ. 6
42. पूर्वोक्त
43. परत्र तस्मिन् विश्वलक्षणे कार्ये यज्ज्ञानं, तत्प्रकाशनशक्तिरूपता सा ज्ञानशक्तिः।। शिवदृष्टिवृत्ति, पृ. 18
44. मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम्, अधि. 3/6-7
45. आमर्शात्मकता ज्ञानशक्ति, तन्त्रसार, पृ. 6
46. सर्वकारयोगित्वं क्रियाशक्तिः, तन्त्रसार, पृ. 6
47. क्रियाशक्तिरेव अयं सर्वो विस्फारः, ई प्र. वि., भाग. 2, पृ. 42

पाँचवाँ अध्याय

काश्मीर शैवदर्शन के पारिभाषिक शब्दों का संग्रह

1. प्रकाश	2. विमर्श	3. स्पन्द
4. चित्ति	5. स्वातन्त्र्य	6. आगम
7. निगम	8. प्रत्यभिज्ञा	9. उपाय
10. मल	11. कञ्चुक	12. पराशक्ति
13. शक्तिपात्	14. ईश्वरतत्त्व	15. पंचकृत्य
16. त्रिक	17. प्रमाता	18. शिव
19. शक्ति	20. सदाशिव	21. अनुग्रह
22. अनुत्तरतत्त्व	23. उन्मेष	24. निमेष
25. उन्मीलन	26. समाधि	27. चित्,चित्त, चेतन्य, चेत्य
28. जीवनमुक्ति	29. परमशिव	30. परावाक् ।।

1. प्रकाश : काश्मीर शैवदर्शन में प्रकाश एवं विमर्श की अवधारणा का अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। प्रकाश यहाँ सत् और ज्ञान का पर्याय है। इसकी व्युत्पति 'प्र' पूर्वक काश् धातो से अच् प्रत्यय लगाकर (प्र+काश्+दिवादिगण/भ्वादिगण+अच्) निष्पन्न होती है। इसका सामान्य अर्थ होता है– प्रकाशयति व प्रकाशयति– अर्थात् यह स्वयं प्रकाशित होता है और दूसरों को प्रकाशित भी करता है। प्रकाश शब्द से तात्पर्य चेतना का अवभासात्मक प्रकाश है।[1] चेतना जहाँ भी हो सदैव स्वयमेव प्रकाशित होता रहती है। काश्मीर शैवदर्शन में प्रकाश का विभिन्न अर्थों में प्रयोग होता है। सर्वप्रथम तो यह प्रकाश सत्ता का पर्याय है।[2] जो प्रकाशित होता है वही सत् है।[3] प्रकाश एवं ज्ञान का ऐक्य परम प्रमाता का अनिवार्य स्वरूप है जहाँ सत् वही है जिसका ज्ञान होता है और ज्ञान उसी का होता है जो प्रकाश रूप है। ज्ञान की

स्वप्रकाशता ही उस प्रमातृ-प्रकाश की स्वप्रकाश रूपता की धारणा को बल देती है। ''ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी'' में स्पष्ट वर्णित है–

''परप्रकाशनात्मनिजरूपप्रकाशनमेव हि स्वप्रकाशत्वं ज्ञास्य भण्यते''।[4]

प्रकाश के संदर्भ में पूर्णता प्रत्यभिज्ञा में कहा गया-

''इति सर्वत्र एवैकः प्रकाशः परमार्थतः।
सर्वाकारनिराकार-स्वभावः स विराजते''।।[5]

2. विमर्श : शिव को प्रकाश विमर्श रूप कहा गया हि। ये एक दुसरे से सर्वथा अभिन्न हैं। एक के अभाव में दुसरे की कल्पना करना असम्भव है। इनमें अविनाभाव सम्बन्ध है। विज्ञानभैरव विवृति में भी कहा गया है– **''प्रकाशमानं न पृथक् प्रकाशात्। स च प्रकाशो न पृथग् विमर्शात्''।**[6] प्रकाश शिव (आत्मा) का स्वरूप है और विमर्श प्रकाशरूप परमात्मा के स्वरूप के प्रतीति शिवरूप प्रकाशरूप है।[7] प्रकाश का स्वभाव विमर्श होता है। जिस किसी को भी अपना प्रकाश अर्थात् अपना आभास होता है, उसे साथ ही साथ अपने अस्तित्व की प्रतीति भी होती रहती है।

विमर्श शब्द वि+मृश् (आमर्शने)+घञ् से निष्पन्न होता है, जिसका सामान्य अर्थ है विचार करने का सामर्थ्य तथा चौतन्य का अनिवार्य लक्षण इसी को माना जाता है। काश्मीर शैवदर्शन में विमर्श का अभिप्राय प्राय संवेदन से लिया जाता है। परमेश्वर भी शुद्ध प्रकाश रूप होता हुआ शुद्ध विमर्श भी है। अतः उसे अपनी असीम शुद्ध और परिपूर्ण चेतना की सत्ता का विमर्श और प्रकाश दोनों ही सदा होते रहते हैं। विमर्श वस्तुतः प्रकाश से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। वह प्रकाश का नैसर्गिक स्वभाव है। इस विमर्शात्मक स्वभाव के कारण प्रकाश को प्रकाश कहते हैं। अर्थात् प्रकाश की प्रकाशता का विमर्श है। ''ईश्वरप्रत्यभिज्ञा'' में स्पष्ट कहा गया है–

**स्वभावमवभासस्य विमर्शविदुरन्यथा।
प्रकाशोऽर्थोपरक्तोऽपि स्पटिकादिजडोपमः।।**[8]

विमर्श और प्रकाश अभेद है। यह शिव के स्वभाव के कारण अपना स्वरूप प्रकट करता है। शिव का प्रकाश और विमर्श रूप स्वरूप उसकी स्वतन्त्रता है। वह ऐसा स्वेच्छा से ग्रहण करता है।

3. स्पन्द : स्पन्द सम्प्रदाय का मूल आधार ''स्पन्दकारिका'' मानी जाती है। "स्पन्दकारिका" पर चार टीकाएँ उपलब्ध हैं। काश्मीर शिवाद्वयवाद में सारतत्त्व

''गति'' की विशिष्ट प्रस्तुति है। संस्कृत कोश ग्रन्थों[9] में स्पन्द का अर्थ होता है– ईषत्, कम्पन, गति, स्फुरण चलन आदि। दार्शनिक संदर्भ में इसका अर्थ ''अत्यन्त सूक्ष्म गति'' है। "स्पन्दकारिका" में इसका अर्थ– गति और क्रिया मात्र रूप में वर्णन किया गया है। आचार्य क्षेमराज के अनुसार इसका अर्थ– स्फुरता, ऊर्मि, बल, सार, हृदय ये सभी तन्त्रों में स्पन्द के पर्याय रूप में उपलब्ध होते हैं।[10] इसके अतिरिक्त इसके लिये घूर्णि शब्द का भी प्रयोग किया गया है। जिसका अभिप्राय पूर्णता के आन्तरिक आनन्दके परम आस्वादन का उच्छलन से लिया जाता है।[11]

4. चित्ति : चित्ति शब्द काश्मीर शैवदर्शन का प्रमुख पारिभाषिक शब्द है। ''तन्त्रसार'' में आचार्य अभिनवगुप्त ने इसकी परिभाषा करते हुए कहा है कि– ''चिदात्मा की प्रकाशरूपता ही उसकी चित् शक्ति है।''[12]

यह अप्रकाशरूपता परम शिव की संविद्रूपता है। अपने इस प्रकाश रूप से ही वह सर्वत्र प्रकाशित है। इसी प्रकाश रूप आश्रय में विश्व के समस्त तत्त्वों का प्रकाशत होता है। आत्मा की इस प्रकाशरूपता को "ईश्वरप्रत्यभिज्ञा" में सर्व-व्याप्त बताया गया है। प्रकाशरूप आत्मा का इच्छा-स्फुरण जगत् भी प्रकाशरूप ही है। "ईश्वरप्रत्यभिज्ञा" में कहा भी गया है– प्रकाशात्म प्रकाश्योऽर्थो।[13]

यह चिति विश्व की रचना का मूल कारण है। प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में भी कहा गया है– **''चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः''**। अर्थात् यह चिति ही विश्व की सिद्धि का हेतु है।[14]

5. स्वातन्त्र्य : स्वातन्त्र्य का कोशगत अभिप्राय है– स्वाधीन, स्वैरी, स्वच्छन्द, निरग्रह आदि।[15] इसकी व्युत्पत्ति ''स्वस्य तन्त्रं प्राधान्यं यत्र'' रूप में तथा ''स्वं तनोति विस्तारयति इति''[16] रूपों में की जा सकती है। इन दोनों निरुक्तियों में स्व के प्राधान्य या विस्तार को स्वतन्त्र शब्द का अभिधेय कहा गया है। काश्मीर शैवदर्शन में स्वातन्त्र्य शब्द का अर्थ इस प्रकार है।

- चित्तत्त्व ही स्वातन्त्र्य है।[17]
- स्वातन्त्र्य अप्रतिहत इच्छा या अवच्छेदरहित प्रकाशमानता है।[18]
- प्रकाशमानता ही स्वातन्त्र्य है।[19]
- इच्छा के अधीन समस्त कार्यों को कर्तृत्व को स्वातन्त्र्य कहते हैं।[20]
- आन्तरी प्रतिभा ही स्वातन्त्र्य शक्ति है।[21]

6. आगम : शैवदर्शन का आधार आगम ग्रन्थों को माना जाता है। आगम ग्रन्थों में शिव एवं पार्वती का संवाद वर्णित है। आगमशास्त्र के स्रष्टा और वक्ता स्वयं भागवान् शिव माने जाते हैं।[22]

भगवान् शिव के द्वारा ही इनका ज्ञान ऋषियों को प्रदान किया था। इसी गुरु परम्परा से यह दर्शन धिरे-धिरे विकसित होता रहा।[23] आगम को तन्त्र भी कहा जाता है। तन्त्र शब्द विस्तार अर्थावली "तन्" धातु "ष्ट्रन्" प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है, जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है– **"तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्राम्"**।[24] अर्थात् वह शास्त्र जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाए उसे तन्त्र कहते हैं। शैव-सिद्धान्त के प्रसिद्ध ग्रन्थ कामिकागम में तन्त्र को परिभाषित करते हुए कहा गया है–

"तनोति विपुलानर्थान् ,तन्त्रमन्त्र-समन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात्, तन्त्रमिभिधीयते"।।[25]

अर्थात् तन्त्रा विपुल अर्थों के साथ तद्नुसारी आचारणशील व्यक्तियो का त्राण करता है उसे तन्त्र कहते हैं। तन्त्र का दुसरा नामा आगम भी है। आगम शब्द को परिभाषित करते हुए आचार्य वाचस्पति मिश्र ने कहा है– **"आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मात् अभ्युदयः–निःश्रेयसोपायाः स आगमः"**। अर्थात् अभ्युदय और निःश्रेयस के उपायों का प्रतिपादक शास्त्र आगम कहलाता है। स्वयं भगवान् शिव आगमों के स्रष्टा और वक्ता कहे जाते हैं।[29] शैवागमों में उल्लेख मिलता है कि लोकानुग्रह के लिए श्रीकण्ठ मूर्ति भगवान् शिव ने इनका ज्ञान ऋषियों को प्रदान किया था और उसके बाद शिष्य प्रशिष्य परम्परा से आगमों का जगत् में प्रचलित हो गया।

"शिवदृष्टि" में भी आचार्य सोमानन्द ने इसका उल्लेख करते हुए कहा है–

"स्थिता शिष्यप्रशिष्याद्यैर्विस्तीर्ण मठिकोदित्ता।
तदेवमेतद् विहितं मया प्रकरणं मनाक्"।।[27]

शैवदर्शन का आधार आगम ग्रन्थ ही माने जाते है। वस्तुतः शैवदर्शन की ज्ञानपरम्परा अत्यन्त विशाल है। इनमें सर्वाधिक प्रमुख मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम्, स्वच्छन्दतन्त्रम्, रुद्रायामलतन्त्रम्, नेत्रतन्त्रम्, स्वायम्भुवतन्त्रम्, विज्ञानभैरवम्, नैश्वासतन्त्रम्, शिवसूत्रम्[28] आदि।

7. निगम : वैदिक साहित्य एवं संस्कृति के लेखक आचार्य कपिलदेव द्विवेदी ने वेद शब्द के पर्यायवाची शब्दों को स्पष्ट करते हुए कहा है– श्रुति, निगम, त्रयी, छन्दस्, आम्नाय एवं स्वाधयाय आदि शब्दों को वेद के अर्थ स्पष्ट करने मे्रं ग्रहण किया जाता है।[29] अतः वेदों के लिये निगम शब्द का प्रयोग होता है। निगम का अर्थ सार्थक या अर्थबोधक है। वेदों को साभिप्राय, सुंसगत और

गम्भीर अर्थ बताने के कारण ''निगम'' कहा जाता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वेदों में ऋषियों द्वारा अनुभूत गम्भीर एवं रहस्यात्मक विचारों का परिगणन किया गया है। निगम शब्द का अर्थ आचार्य वामन शिवराम आप्टे ने भी स्पष्ट किया है (नि+गम्+घञ्) अर्थात् नि उपसर्ग गम् धातो घञ् प्रत्यय के संयोग से निगम शब्द बनता है, जिसका अर्थ है– वेद एवं वेद के मूल पाठ में कहा गया है– ''साढयै साढ्वा शाढेति निगमे'' (पा.-६/३/११३)।

इसके अतिरिक्त उपवेद, वेद के विधि वाक्य, ऋषियों के वचन आदि के निगम[30] शब्द का प्रयोग किया गया है।

राष्ट्रपति से सम्मानित डॉ. उमा प्रसाद पाण्डेय द्वारा सम्पादित संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश में भी निगम शब्द का अर्थ स्पष्ट किया गया है– निगच्छन्ति अनेन इति। इसका अर्थ– वेद, वेद ग्रन्थ, वेद के व्याख्यात्मक ग्रन्थ, वेदांग, वैदिक शब्द आदि से ग्रहण किया जाता है।[31]

8. प्रत्यभिज्ञा : प्रत्यभिज्ञा शब्द का सामान्य अर्थ है– पहचान करना। संसार में आने के बाद जीव अपने स्वरूप को भूल जाता है। उसकी पहचान करना ही प्रत्यभिज्ञा है। इसमें प्रति+अभि+ज्ञा तीन शब्द हैं। जिसमें प्रति का अर्थ है–प्रतीप (प्रतिकूल), अभि का अर्थ है– अभिमुख रूप से या आमने सामने या स्फुटरूप से तथा ज्ञा का अर्थ है– ज्ञान या प्रकाश। अतः स्पष्ट होता है कि ज्ञात होने पर भी विस्मृत तत्त्व का ज्ञान होना ही प्रत्यभिज्ञा है।

आचार्य अभिनवगुप्त ने 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' में कहा है– ''प्रतीपमात्माभिमुख्येन ज्ञानं प्रकाशः प्रत्यभिज्ञा''[32] अर्थात् प्रति-प्रतीप अर्थात् ज्ञात होने पर भी मोहवश विस्मृत तत्त्व का, अभि-अभिमुख रूप से, स्फुटता जो ज्ञा-ज्ञान अर्थात् प्रकाश है उसे प्रत्यभिज्ञा के नाम से जाना जाता है।

9. उपाय : "तन्त्रालोक" के प्रथम आह्निक् में आचार्य अभिनवगुप्त ने मुक्तिं के चार उपायों का वर्णन किया है। जिनका वर्णन इस प्रकार है।

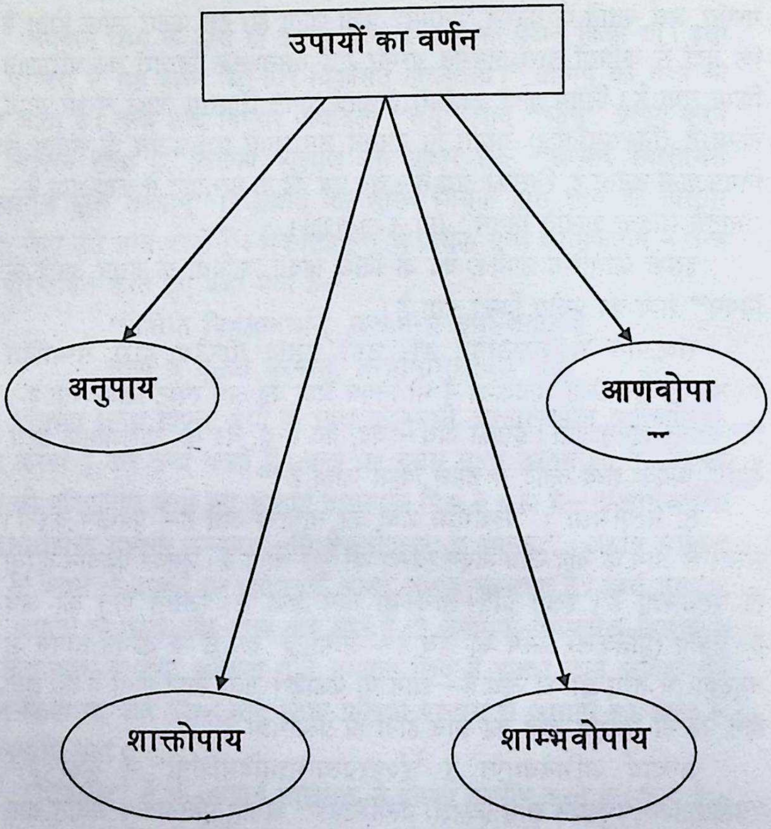

1. **अनुपाय :** यह पूर्णतया अनुग्रह मार्ग पर आधारित है। गुरु कृपा से ही इसमें साधक का मुक्ति का मार्ग परिलक्षित होता है। यह शाम्भवोपाय का चरम रूप है। इसे आनन्दोपाय भी कहा जाता है।
2. **शाक्तोपाय :** "तन्त्रालोक" में स्पष्ट कहा है– "भेदोभेदौ शक्तिता"[33]। बाह्य उच्चारण, करण, ध्यान, वर्ण और स्थान कल्पना और स्थान की कल्पना न होने से अभेदावस्था है और चित्त से इनका चिन्तन होने के कारण विकल्पात्मकता रूप भेद से भी सम्भव है। अतः यहाँ उभयत्व स्वीकार किया जाता है। इसे ज्ञानोपाय भी कहा जाता है।
3. **आणवोपाय :** अणुषु भेदपायेषु भव आणवः। उच्चार और उच्चारण, (प्राणायाम,

मन्त्र, जप) जो प्राणापानादि एवं मुख्य प्राण स्वरूप है, वह करण, ध्यान, वर्ण और स्थान की कल्पनाओं भेदों से युक्त आणवोपाय कहलाता है।

4. **शाम्भवोपाय :** शाम्भव समावेश में चिन्तन का भी त्याग कर दिया जाता है। इसमें विकल्प की कोई उपयोगिता नहीं रहती है।

श्रेष्ठ गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञेय पारमार्थिक चिदात्मा रूप अवश्य ज्ञातव्य बोध से विकल्प को विगलित हो जाता है तथा तब भावनादि की अपेक्षा न करने वाली अविकल्प रूप संवित् शिव के साथ तादात्म्य लाभ करती है। यही शाम्भव समावेश है।

10. मल : मल का सामान्य अर्थ होता है– असुद्धता, चौतन्यरूपी सवर्ण से जो ढक लेता है वही मल है। काश्मीर दर्शन में ब्रह्मण्ड की संकुचित अवस्थाएँ मल कहलाती हैं। जिसके कारण आत्मा की वास्तविक अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है। त्रिविध मलों का लघु वर्णन इस प्रकार है।

1. **आणव मल :** इसकों मूल मल माना जाता है। यह परम चौतन्य को संकुचित करके अणु बना देता है। अणु का अर्थ् होता है– क्षुद्र, अत्यन्त शूक्ष्म बिन्दु। इसकी संकुचित दशा से परम चौतन्य का वास्तविक स्वरूप ढक जाता है। अर्थात् पूर्ण स्वरूप का अज्ञान, संकोच या अणुता- आणव मल है।

2. **मायीय मल :** यह परिसीमित स्थिति है जो माया के द्वारा आविर्भूत होती है। उसी माया के द्वारा जीव को सूक्ष्म और स्थूल शरीर प्राप्त होता है। यह माया विश्वव्यापि है। इसके प्रभाव से जीव स्वयं को भूल जाता है। अतः उसे प्रत्यभिज्ञा करने की आवश्यकता पड़ती है।

3. **कार्म मल :** अन्तःकरण की प्रेरणा से ज्ञानेन्द्रियाँ और क्रमेन्द्रियाँ द्वारा निष्पन्न कर्म की जो वासनाएँ अथवा जो संस्कार रह जाते हैं। उन्हें कार्म मल कहा जाता है। यही वासनाएँ मनुष्य को एक जन्म से दुसरे जन्म की ओर प्रवृत्त कराती है।

11.कञ्चुक : माया के पाँच कञ्चुकों पर एक अन्य शोधपत्र का लेखन भी किया जा सकता है, तथापि इनकी सामान्य दार्शनिक मीमांसा इस प्रकार है।

1. **कला :** इसमें के द्वारा कर्तृत्व का संकोच होता है। शिव का स्वातान्त्र्य सीमित हो जाता है। उसके सर्वकर्तृत्व के स्थान पर किञ्चित् कर्तृत्व आ जाता है। अतः इसे किञ्चित्कर्तृत्वोद्‌बलनमयी कहा गया है।[34]

2. **विद्या :** इसमें ईश्वर का सर्वज्ञत्व सिमटकर किञ्चिज्ञत्व में आ जाता है। जीव

में कुछ वेद्यों का ज्ञान उत्पन्न होने के कारण इसे किंचिज्ज्ञत्वोन्मीनरूपा कहा गया है।[35]

3. **राग :** राग तत्त्व कञ्चुक पूर्णतृप्ति से यत्किञ्चित् भोगों आ जाता है। किसी भी वस्तु मम् समझकर उसे गुणशालिनी मानने लगता है। अतः इस गुणारोपणनय शक्ति को ही राग कहा गया है।[36]

4. **काल :** जिसके द्वारा परमेश्वर नियत्व संकुचित् होकर अतीत, वर्तमान और अनागत में परिच्छिन्न हो जाता है उसे काल कहते हैं।

5. **नियति :** इसमें परमेश्वर का स्वातान्त्र्य संकुचित होकर विशिष्ट कार्य के लिये विशिष्ट कारण का नियम धारण करता है। नियम की नियामिका होने के कारण यह नियति कहलाती है।[37] माया के पाँच कञ्चुकों के कारण ही जीव स्वयं के वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है।

12. पराशक्ति : काश्मीर शैवदर्शन में इसको ही सर्वोच्य शक्ति माना जाता है। इसको परा शक्ति कहा जाता है। क्योंकि इसकी सहकारी शक्तियाँ या गौण शक्तियाँ जगत् में व्याप्त होकर भिन्न-भिन्न कार्य सम्पन्न करती हैं। शक्ति का अर्थ है शिव की चेतना। यह शिव से अभिन्न है। इसकों अनेक नामों से जाना जाता है। जैसे– परावाक्, स्वातन्त्र्य शक्ति।

13. शक्तिपात : इसमें शक्ति शिव का क्रियात्मक बल है। अतः वह शिव से अभिन्न है। शक्ति के द्वारा ही शिव पञ्चकृत्य करता है। शक्तिपात का सामान्य अर्थ होता है– "शक्ति का किसी पर गिरना या शिव का अनुग्रह होना"। जब शिष्य या साधक पर गुरु द्वारा या शिव द्वारा आत्मिक बल का उन्मेष होता है वही शक्तिपात कहलाता है। शिव जब अपने शिष्यों पर शक्तिपात् करते हैं तब वे शिष्य शिव का अनुग्रह पाकर स्वयं को जान लेते हैं। तत्पश्चात् वे "शिवोऽहम्" को उद्गोष करते हैं।

14. ईश्वरतत्त्व : यह तत्त्व चौथा है। इसमें ज्ञान की सर्वाधिक प्रधानता रहता है। ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी में भी कहा गया है–"ज्ञानशक्ति प्राधान्ये ईश्वरतत्त्वम्"।[38] इसमें अहं का ज्ञान और विश्व का आभास दोनों समानरूप से एक साथ विद्यमान रहता है। यहाँ अहम् अंश गौण रहता है और इदम् की प्रधानता होती है। "यह मैं हूँ" इसका शुद्ध प्रत्यय सहित ज्ञात होता है। अर्थात् विश्व का स्फुटता होने वाला वेद्य परामर्श ही ईश्वरतत्त्व कहलाता है।[39] इसमें प्रमाता की संज्ञा मन्त्रेश्वर कहलाती है।

15.पञ्चकृत्य : काशमीर शैवदर्शन में सृष्टि शिव का विलास है। उससे अलग न तो कोई वस्तु है और नहीं कल्पना की जा सकती है। परमशिव ही परमकारण है।[40]

विश्व की सृष्टि और प्रलय बन्धन और मोक्ष की कल्पना उसका स्वातन्त्र्य स्वभाव है।[41] उसके इस स्वभावरूप स्वातन्त्र्यशक्ति की संज्ञा स्पन्द है।[42] इसी स्वभाव के कारण वह पञ्चविधकृत्यों में निरन्तर संलग्न रहता है। इस विषय में "अनुत्तरप्रकाशपंचाशिका" एवं "बोधपंचदशिका" में स्पष्ट वर्णन मिलता है। यथा–

"एष देवोऽनया देव्या नित्यं क्रीडारसोत्सुकः।
विचित्रान्सृष्टिसंहारान्विधते युगपद्विभुः"[43]

अतः शिव स्वभावतः पंचकृत्यकारी है, जो सदैव पंचकृत्य करता रहता है। यह स्वातन्त्र्यशक्ति के कारण ही पञ्चकृत्यरूपी महालीला धारण करता है। इन पञ्चकृत्यों का लघुवर्णन इस प्रकार है

1. **सृष्टि :** इसमें परमशिव अपने भीतर से सबकुछ बाहर अभिव्यक्त कर देता है। सृष्टि शिव का वैभव है जिसे वह बिखेर देता है। इससे स्पष्ट होता है कि वह जगत् का उपादान और निमित्त कारण दोनों हैं। केवल उसकी शक्ति ही जगत् रूप में आभासित होती है।

2. **स्थिति :** सृष्टि के अनन्तर जगत् का ठहराव और नियमपूर्वक उसका पालन ही स्थिति है।

3. **संहार :** इसका अर्थ होता है– समेट लेना या बटोर लेना। जिसका सर्जन किया था, उसको पुनः समेट लेना ही संसार की प्रक्रिया है।

4. **तिरोधान :** इसके माध्यम से परमशिव अपने वास्तविक स्वरूप का विलय, विधान, तिरोधान, निग्रह, आवरण या गोपन कर लेता है। पुनः जगत् के रूप में आभासित होता है।

5. **अनुग्रह :** इसमें परमशिव अपने स्वरूप का प्रकाश शक्ति के माध्यम से करता है। इसमें वह शिष्य पर अनुग्रह करता है, जिससे वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानने का प्रयास करता है। यही प्रत्यभिज्ञा कहलाती है।

16. त्रिक शब्द : काश्मीर शैवदर्शन को त्रिक दर्शन के नाम से भी जाना जाता है। तन्त्रालोक में इसे त्रिकमत कहा गया है।[44] इसमें सिद्धान्ततन्त्र, नामकतन्त्र

एवं मालिनीतन्त्र का परिगणन किया जाता है। तन्त्रत्रय की प्रधानता के कारण इसे त्रिकदर्शन कहा जाता है। इस दर्शन में भेद, अभेद और भेदाभेद की भी प्रधानता है। इसके अतिरिक्त इसमें शिव, शक्ति और जगत् का वर्णन भी स्वातन्त्र्यवाद में किया गया है।

त्रिकदर्शन में पर अपर और परापर रूप तीन त्रिक माने गए हैं। अतैव इस दर्शन को त्रिकदर्शन कहा जाता है। शिव और शक्ति का संघट्ट परत्रिक कहलाता है– **''शिवशक्तिसंघट्टात्मकं परत्रिकशब्दवाच्यम्''**।[45] अपरत्रिक के अन्तर्गत शिव और शक्ति तथा नर को रखा जाता है– **''नरशक्तिशिवात्मकं त्रिकम्''**।[46] परापरत्रिक में परा, परापरा और अपरा देवी-त्रयी अधिष्ठात्रियाँ है।[47] इसके कारण ही यह दर्शन ''त्रिकमत'' कहलाता है। महारथमंजरीकार महेश्वरानन्द और जयरथ ने भी इस दर्शन का स्पष्टरूप से ''त्रिकदर्शन'' का नाम दिया है।[48]

17. प्रमाता : काश्मीर शैवदर्शन में प्रमाता का अर्थ होता है– ज्ञाता, प्रमाण द्वारा किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने वाला या अनुभव करने वाला। प्रमाता को प्रमातृ भी कहा जाता है। काश्मीर शैवदर्शन में सप्तविध प्रमाता के स्वरूप का वर्णन किया गया है। प्रमातृवर्ग में सप्तविध प्रमाताओं के नाम इस प्रकार हैं–

1. सत्यप्रमाता – शिव।
2. मन्तमहेश्वरप्रमाता – सदाशिव।
3. मन्त्रेश्वरप्रमाता – ईश्वर।
4. मन्त्रप्रमाता– शुद्धविद्या।
5. विज्ञानाकल प्रमाता – शुद्धविद्या से निचे और माया से उपर।
6. प्रलयाकल – मायातत्त्वातीत,प्रलयाकेवली।
7. सकल – मायाप्रमता, जीव।

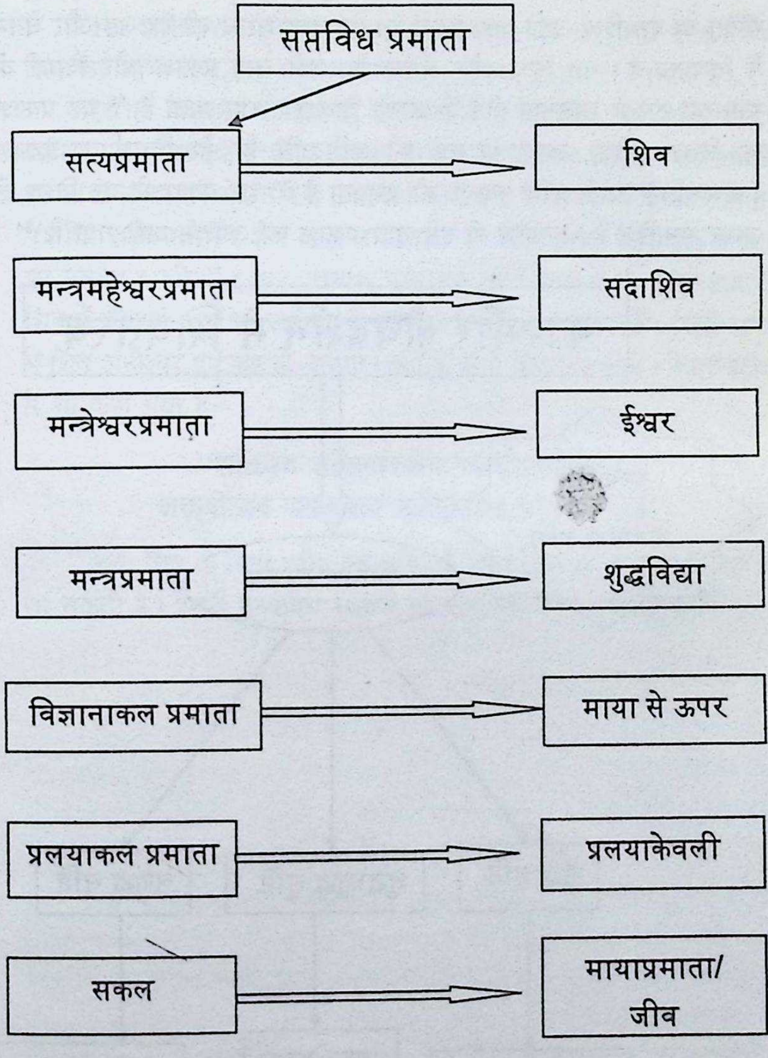

18. शिव : शिव ही एकमात्र परमतत्त्व है। परमशिव शुद्ध अद्वैत की तत्त्वातीत स्थिति है। इसे ही परमकारण कहा गया है–"शिव परमकारणम्" ।[49] इसे अनुत्तर तत्त्व भी कहा जाता है। यह सदैव दो भाव विश्वमय और विश्वोतीर्ण में रहता है। इस चित् की शक्ति चिति है– "चितिः स्वतन्त्रता विश्वसिद्धिहेतुः" ।[50]

यह अपनी स्वेच्छा से विश्व का निर्माण करता है–"स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति" ।[51] इसको अनेक नामों से जाना जाता है। इसे परमेश्वर, परा

संवित् या परमशिव आदि कहा जाता है। यह तत्त्व संसार की हर जड और चेतन में विद्यमान है। यह नित्य और अनन्त है। यही तत्त्व प्रकाश और विमर्श के स्वातन्त्र्य-रूप से भासमान होने के कारण शिवतत्त्व कहा जाता है।[52] यह प्रकाश का विमर्श (बोध), उसके शिवरूप की अभिव्यक्ति है और विमर्श का प्रकाश (अभिव्यक्ति) उसके शक्ति स्वरूप की प्रधनता है।[53] इस प्रकार से यह विश्व के अन्दर समाहित है। इसलिये ही इसे सत्य प्रकाश का आभास कहा गया है।[54]

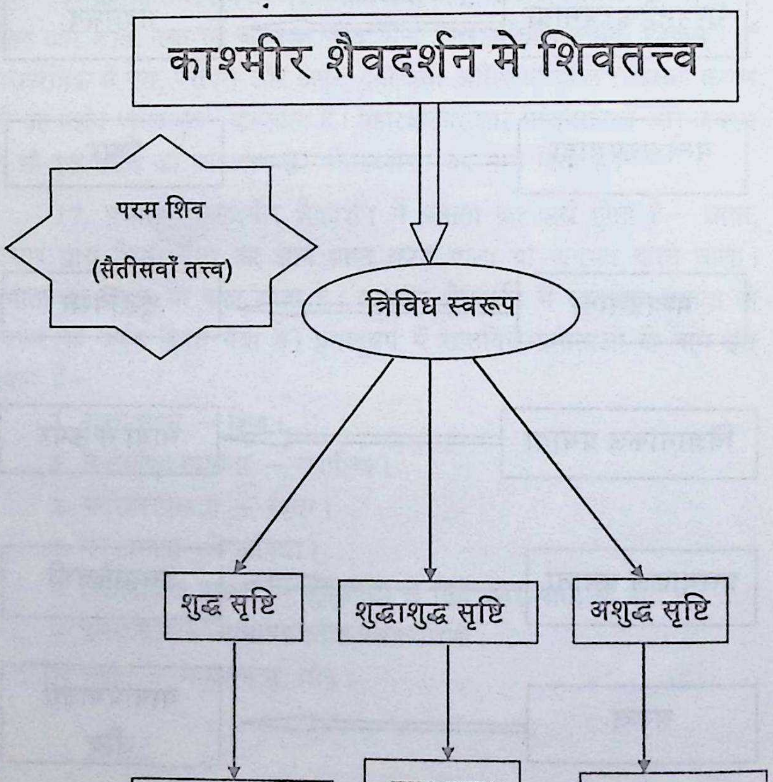

प्रथम पाँच तत्त्व :– शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, सदविद्या ।
सात तत्त्व :– माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति, पुरुष ।
चौबीस तत्त्व :– अव्यक्त, महत्, अहंकार, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच क्रमेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रा, पाँच महाभूत।।

19. शक्तितत्त्व : यह परमशिव की आभासरूपता का दुसरा तत्त्व है। यह शिव का अभिन्नरूप है। यह प्रकाशात्मा है। विमर्श ही इसका स्वभाव है।

इसे ही विश्वमय के नाम से भी जाना जाता है। शिव और शक्ति दोनों में अविनाभाव सम्बन्ध है।[55] शिव अनुत्तर तत्त्व है, शक्ति तत्त्व अनुत्तरा कहलाती है। इन दोनों में परस्पर भेद नहीं है। आचार्य सोमानन्द ने शिवदृष्टि में भी कहा है– **''शक्ति शक्तिमतोर्भेद शैव जातु न विद्यते''**।[56] यही अनुत्तर तत्त्व ज्ञान व क्रिया का समवेत रूप है।[57] इसको परावाक्, स्वातन्त्र्य आदि नामों से भी जाना जाता है। शिव में जो पूर्ण अकृत्रिम अहंभाव है उसी को विमर्श शक्ति कहते हैं। इसके अभाव में शिव अनीश्वर एवं जड हो जाएगा। क्योंकि दोनों तत्त्व एक ही है। नेत्रतन्त्रटीका में भी कहा गया है–

''शक्तिश्च शक्तिमांश्चौव पदार्थद्वयमुच्यते।
शक्त्योऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांश्च महेश्वरः''।।[58]

अतः शिव के बिना शक्ति एवं शक्ति के बिना शिव की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसके पञ्चविध स्वरूपों का सामान्य वर्णन इस प्रकार है।

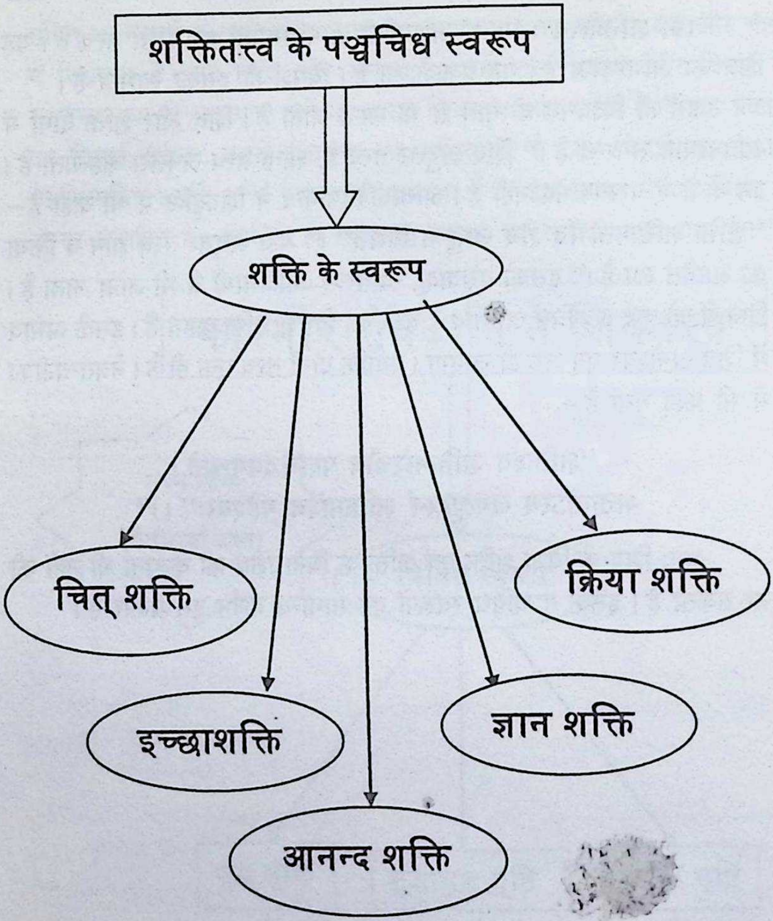

1. **चित् शक्ति :** चित् शक्ति से परमशिव प्रकाशय वस्तुओं के अभाव में भी स्वयं प्रकाशित होते रहते हैं।
2. **इच्छाशक्ति :** परमशिव अपने को स्वतन्त्र और अप्रतिहत इच्छा से सम्पन्न अनुभव करते हैं।
3. **आनन्द शक्ति :** इससे वस्तुओं के उपयोग के बिना ही परमेश्वर पर निरतिशय आनन्द में मग्न रह्ते हैं।
4. **ज्ञान शक्ति :** इस शक्ति के कारण शिव स्वयं ज्ञानरूप है तथा सभी पदार्थों का पूर्ण ज्ञान रखते हैं।

5. **क्रिया शक्ति :** इस शक्ति के द्वारा शिव स्वयं को सभो रूपों में धारण करने में स्वतन्त्र है।

20. सदाशिव : इसे सदाख्य तत्त्व भी कहते हैं।[59] इस तत्त्व में अहन्ता और इच्छा-प्राधान्य रहता है। जब शक्ति में उन्मेष होता है, तब सृष्टि होती है। जब निमेष होता है तब जगत् का लय होता है। इसी उन्मेष के कारण सदाशिवतत्त्व की अभिव्यक्ति होती है। सृष्टि के विकास में यह पहला तत्त्व है, जिससे सत् का ज्ञान होता है।[60] इस अवस्था में ब्रह्माण्ड़ या अनुभव का इदम् अंश धुँधले विचार के रूप में रहता है।[61] इसमें मै और विश्व में कोई भी भेद नहीं रहता है। सदाशिव की इस दशा में मन्त्रमहेश्वर कहा जाता है।

21. अनुग्रह : जीवों के ऊपर की जाने मोक्ष प्रदायिका कृपा अनुग्रह कहलाती है। यह प्राणियों को अपने स्वरूप का साक्षात्कार करवाती है। यह परमेश्वर के अन्तः प्रेरणा की लीला है। यह जीवों को मोक्ष प्रदान करने वाली पारमेश्वरी शक्ति है। यह शिव के शक्तिपात का परिणाम है। यह पर्मेश्वर पञ्चकृत्यों में से एक है–

सृष्टिसंहारकर्तारं विलयस्थितिकारम्।
अनुग्रहकरं देवम् प्रणतार्तिविनाशनम्।।[62]

साधना पथ मार्ग में इसका विशेष महत्त्व होता है। परम शिव अपने स्वरूप का प्रकाश इस शक्ति के माध्यम से करता है। इसकी सहायता से मल से युक्त जीव स्वयं के स्वरूप को पहचानने का प्रयास करता है। शिव की इच्छा और उसके स्वभाव से ही यह सिद्ध होता है।

22. अनुत्तरतत्त्व : आचार्य अभिनवगुप्त ने अनुत्तरतत्त्व की व्याख्या सोलह प्रकार से की है। यह व्याख्या अत्यन्त गहन एवं गम्भीर हैं। इसको समझ लेना ही शैवदर्शन का सार समझ लेना है। आचार्य अभिनवगुप्त की षोड़शी व्याख्या इस प्रकार है

अनुत्तरतत्त्व के सोलह प्रकार

1. अनुत्तरम्-न विद्यते उत्तरम् अधिकं यत्।
2. तथा न विद्यते उत्तरं प्रश्नप्रतिवचनोरूपं यत्र।
3. उत्तरणम्-उत्तरो-भेदवादाभिमतोऽपवर्गः।
4. अनुत्तरम्- ईदृश एव, नाभि-हृत्-कण्ठ-तालु-ब्रह्मरन्ध्र-भैरवबिलाद्यष्ठानक्रमप्राप्तः

ऊर्ध्वतरणक्रमः 'उत्तरः'।

5. अनुत्तरम्-'उत्तरन्ति अतः'-इति 'उत्तरो बन्धः'।
6. अनुत्तरम्-उत्तरणम्-'उत्तरो' मोक्षः।
7. उत्तरं च शब्दनं, तत् सर्वथा- ईदृशं, तादृशं इति व्यवच्छेदं कुर्यात्, तत् यत्र न भवति अव्यवच्छिन्नम् ईदृशम्-अनुत्तरम्।
8. अनुत्तरम्-एवम् एव नरात्मनः शाक्तम् उत्तरम्।
9. तथा विप्र-राजन्य-वैश्य-शूद्रान्त्यजातिविभागमयम् ऊनाधिकत्वं यत्र न स्यात् -भावप्राधान्यम् उत्तरशब्दस्य।
10. उत्तराः पश्यन्त्यद्या शक्त्यः। (अनुत्तरम्-न विद्यते 'उत्तराः'(शक्तिभेदाः) यत्र।
11. अघोराद्याः। (अनुत्तरम्-न विद्यते 'उत्तराः' (शक्तिभेदाः) यत्र।
12. पराद्याः। (अनुत्तरम्-न विद्यते 'उत्तराः'(शक्तिभेदाः) यत्र।
13. नुद प्रेरणे इत्यस्य नोदनं नुत्, तया तरणं दीक्षाक्रमेण तरः।
14. अनुत्तरम्-अनिति अन् तस्यैव उत्तरत्वं यत्र।
15. अनुत्तरम्-'अ' कलाया या 'नुत्'-विसर्गान्तता, तस्या एव 'तरः' यत्र।
16. अनुत्तरम्-अविद्यामाना 'नुत्'-क्रमात्मक क्रियामयी प्रेरणा यत्र तत् 'अनुत्' ततोऽपि सातिशयम्।।

१. अनुत्तरम्– "न विद्यते उत्तरम् अधिकं यतः"। अर्थात् अनुत्तरतत्त्व वह पद है, जिससे और किसी तत्त्व की बढती और भिन्नता नहीं है। अर्थात् यह षट्त्रिंशत् तत्त्वों से अधिक नहीं हैं। वह स्वयं प्रत्येक रूप में परिपूर्ण होने के कारण निर्बाध एवं अपेक्षा से रहित ज्ञानरूपता के चमत्कार अर्थात् अहंरूप में प्रसार की जीवनाधायिनी शक्ति है।[63]

२. तथा– न विद्यते उत्तरं प्रश्नप्रतिवचनोरूपं यत्र।[64] 'अनुत्तर' पद वह है, जिसमें प्रश्नरूपता और प्रतिवचनरूपता का कोई घोटाला नहीं है। अर्थात् मिज्ञान से लेकर अनाश्रित शिवज्ञान तक प्रसार में आने वाले अनन्त ज्ञानों की परम्परा का एकमात्र विश्रान्ति स्थान बने हुए जिस अपार संवित्-सागर से ही उठने वाली तरङ्गमाला का पात्र शिष्य बन जाता है, वही वास्तव में, हमेशा उदय की अवस्था में रहने वाला तत्त्व है।

३. उत्तरणम्– उत्तरो–भेदवादाभिमतोऽपवर्गः। (अनुत्तरम् – न विद्यते 'उत्तरः' उत्तरणं यत्र।)[65] 'अनुत्तर' वह भूमिका है, जिसमें तथाकथित भूमिकायें पार करके तथा-कथित अपवर्ग को प्राप्त करने का कोई बखेडा नहीं है। वही अनुत्तरतत्त्व कहलाता है।

४. अनुत्तरम्– ईदृश एव, नाभि-हृत्-कण्ठ-तालु-ब्रह्मरन्ध्र-भैरवबिलाद्यष्ठानक्रमप्राप्तः ऊर्ध्वतरणक्रमः 'उत्तरः'। (न विद्यते 'उत्तरः' उर्ध्वतरणक्रमः यत्र।)[66] 'अनुत्तर' वह पद है, जिसमें छः चक्रों को भेदन करके ऊपर सहस्रार-चक्र तक चढने के क्रम को अपनाने का कोई प्रयोजन नहीं है। इसका यहाँ विस्तृत वर्णन दिया गया है।

५. अनुत्तरम्– 'उत्तरन्ति अतः' – इति 'उत्तरो बन्धः'। (न विद्यते 'उत्तरः' बन्धः यत्र।)[67] 'अनुत्तर' पद वह है, जिसमें कोई भी तथा-कथित बन्धक वर्तमान नहीं है। उत्तर शब्द का अर्थ बन्धक है और बन्धक संसार को माना जाता है, विवेकशील व्यक्ति इसको काट कर आगे चले जाते हैं।

६. अनुत्तरम्– उत्तरणम्-'उत्तरो' मोक्षः। (न विद्यते 'उत्तरः' मोक्षः यत्र।)[68] 'अनुत्तर' वह पद है, जिसमें तथाकथित मोक्ष जैसी कल्पना का भी कोई स्थान नहीं है। उत्तर शब्द से मोक्ष का अभिप्राय भी लिया जाता है, क्योंकि यह (संसाररूपी सागर को) पार करके प्राप्त की जाने वाली भूमिका की कल्पना है। फलतः जिस पद में इस प्रकार के उत्तर के वर्तमान न हो, वही अनुत्तर-पद कहलाता है।

७. उत्तरं च शब्दनं, तत् सर्वथा– ईदृशं, तादृशं इति व्यवच्छेदं कुर्यात्, तत् यत्र न भवति अव्यवच्छिन्नम् ईदृशम् – अनुत्तरम्। (न विद्यते 'उत्तररू' शब्दनं यत्र।)[69] 'अनुत्तर' वह पद है, जिसमें शब्दन अर्थात् इयात्ताओं को जन्म देने वाले मानसिक ऊहापोह का टंटा नहीं है। उत्तर शब्द का अभिप्राय शब्दन अर्थात् मानसिक उहापोह भी है। वह सर्वथा यह वस्तु ऐसी है, वैसी थी आदि रूपो वाली इयात्ताओं को जन्म देता है। जहाँ पर इस प्रकार इयत्तायें न हो और व्यवच्छेदों से रहित हो वह पद अनुत्तर है।

८. अनुत्तरम्– एवम् एव नरात्मनः शाक्तम् उत्तरम्। (न विद्यते 'उत्तरः' उत्तरत्वं यत्र।)[70] 'अनुत्तर' वह पद है, जिसमें सापेक्ष उत्कर्षो का कोई महत्त्व नहीं है। इसका यहाँ विस्तार से वर्णन किया गया है।

९. तथा विप्र-राजन्य-वैश्य-शूद्रान्त्यजातिविभागमयम् ऊनाधिकत्वं यत्र न स्यात् भावप्राधान्यम् उत्तरशब्दस्य।[71] (अनुत्तरम् –न विद्यन्ते 'उत्तराः' (शक्तिभेदाः) यत्र।) अर्थात् 'अनुत्तर' पद वह है जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र और अन्त्य जाति आदि, इस प्रकार के जातिविभाग पर आधारित नीची और ऊँची जात का कोई बखेडा नहीं है। यह उत्तर शब्द भाववाचक है।

१०. उत्तराः पश्यन्त्यद्या शक्त्यः। (अनुत्तरम् –न विद्यते 'उत्तराः' (शक्तिभेदाः) यत्र।

११. अघोराद्याः। (अनुत्तरम् – न विद्यते 'उत्तराः' (शक्तिभेदाः) यत्र ।

१२. पराद्याः। (अनुत्तरम् –न विद्यते 'उत्तराः'(शक्तिभेदाः) यत्र।[72] अर्थात् उत्तर पद पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी, अघोरा, घोराघोरा, घोरा और परारूपिणी, सूक्ष्मरूपिणी, स्थूलरूपिणी इस प्रकार से शक्ति के कपोल कल्पित भेदों घोटेले नहीं है।

१३. नुद प्रेरणे इत्यस्य नोदनं नुत्, तया तरणं दीक्षाक्रमेण तरः। (अनुत्तरम् – न भवति 'नुदा' तर- तरणं यत्र।)[73] – 'अनुत्तर' वह पद है, जहाँ शिष्य को दीक्षा-क्रम के धक्के से ठेलकर पहुँचाया नहीं जा सकता है।

अर्थात् दीक्षा, जप आदि का वर्णन किया जाता है। परन्तु इस अनुत्तर मार्ग में स्वभाव से ही प्रकाशमान सर्वव्यापक और देश, काल एवं आकार की विशेषताओं से विशिष्ट न बन सकने वाले चित्त-तत्त्व को इन विड़म्बनाओं का पात्र नहीं बनाया जा सकता है। इस प्रकार की प्रेरणाओं से जहाँ पार उतारा नहीं जा सकता है, वही अनुत्तर-पद है।

१४. अनुत्तरम् अनिति अन् तस्यैव उत्तरत्वं यत्र।[74] अन् धातु का अर्थ है सांस लेना। यह अणु अर्थात् जीवात्मा का द्योतक है। क्योंकि वह शरीर, प्राण और पुर्यष्टक में अवस्थित रहकर प्रतिसमय सांस लेता रहता है। यहाँ यह शब्द शून्य प्रमातृ-भाव में अवस्थित रहने वाली आत्मा का भी द्योतक है। यह तत्त्व सर्वतोमुखी और पार्मार्थिक उत्कर्ष पाया जाता है। अतः अनुत्तर-पद कहलाते हैं।

१५. अनुत्तरम्– 'अ' कलाया या 'नुत्' विसर्गान्तता, तस्या एव 'तरः' यत्र। (अ+नुत्+तरः)[75] 'अ' प्रकार की को कला, अर्थात् अनुत्तर-शक्ति है, इसका वास्तविक रूप अमायीय, शास्त्रों में वर्णन किए जाने के अयोग्य और नैसर्गिक एवं महान् प्रकाशपुञ्च में ही विश्रान्ति होकर वर्तमान रहने के कारण चिद्-समुद्र का किसी भी तरंगायमानता से हीन स्वरूप-चमत्कार ही है। यही अ कला प्रेरणामयी विसर्गान्तता का सर्वतोमुखी साम्राज्य छाया रहता हो, वही अनुत्तर-पद है। इसका यहाँ विस्तृत वर्णन किया गया है।

१६. अनुत्तरम्– अविद्यामाना 'नुत्' –क्रमात्मक क्रियामयी प्रेरणा यत्र तत् 'अनुत्' ततोऽपि सातिशयम्।[76] अनुत्तरधाम तो वही है, जिसमें सक्रम क्रियात्मकता से जनित प्रेरणा के लिये कोई अवकाश न हो और जो आकाश एवं शून्य इत्यादि से भी उत्कृष्ट हो। वही अनुत्तर-पद है। आचार्य अभिनवगुप्तपादाचार्य ने यहाँ अनुत्तर-पद की व्याख्या अत्यन्त गम्भीर और गहन दार्शनिक शैली में प्रस्तुत की है। यहाँ पद पद अनुत्तरतत्त्व के विषय में कहा गया है–

"अनुत्तरं तद्-हृदयं हृदये ग्रन्थिरूपता।
ग्रन्थि षोडशाधा ज्ञात्वा कुर्यात् कर्म यथासुखम्।।

अर्थात् अनुत्तर-पद समूची विश्वरूपता का हृदय अर्थात् शक्ति-केन्द्र है। उसमें सोलह प्रकार की गाठें विद्यमान हैं। विवेकी व्यक्तियों के उन सोलह प्रकार की गाठों का रहस्य भलीभाँति हृदयङ्गम करने के उपरान्त ही सुखपूर्वक, अर्थात् निरूशंक होकर कार्यभार चलाना चाहिए।[77]

अनुत्तरतत्त्व का चित्र

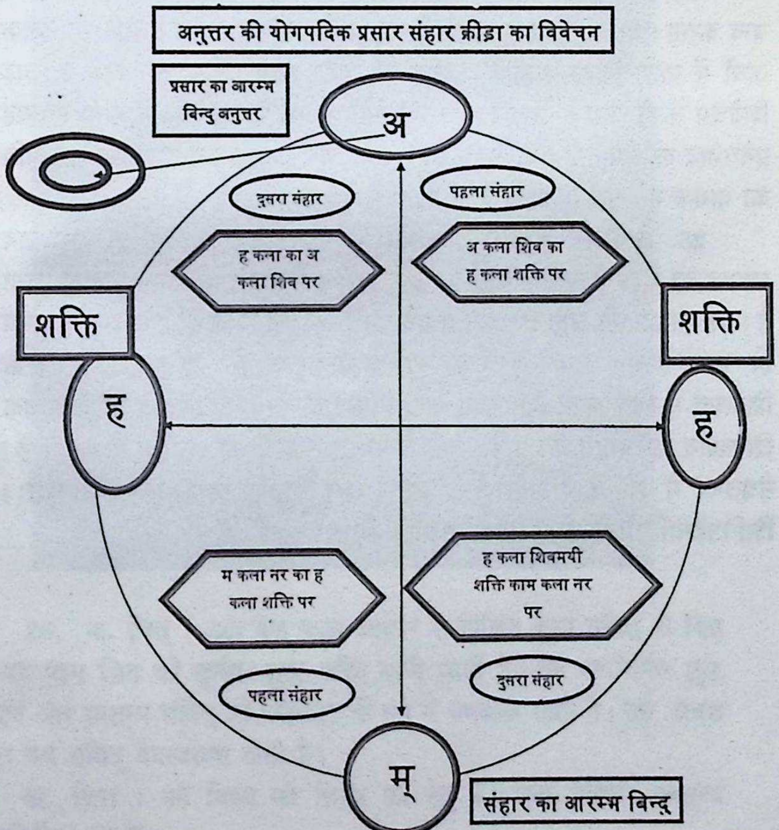

23. उन्मेष : शिव की इच्छाशक्ति का बहिर्मुख स्पन्दन होना ही उन्मेष कहलाता है। क्रियाशक्ति की अभिव्यक्ति का यहाँ से प्रारम्भ होता है। यह शब्द उद्+मिष् धातु+घञ् प्रत्यय के संयोग से बनता है, जिसका अर्थ होत है– आँख का खुलना, स्फुरण होना या दृष्टि का उन्मीलन होना आदि। यह शिव की अभिव्यक्तिका शक्ति है। आत्मा के ज्ञान का प्रकाश कराने में यह सहायक है। उन्मेष का स्पष्ट अर्थ उदय भी होता है। यह स्पन्दन, सृष्टि और उन्मीलन आदि सभी अर्थों में ग्रहण किया जाता है। जगत् की सृष्टि होना ही उन्मेष का मूल भाव है। स्पन्दकारिका, स्पन्दनिर्णय तथा स्पन्दसन्दोह में इसका विस्तृत विवेचन किया गया है।

24. निमेष : इसका सामान्य अर्थ होता है– नेत्र का उन्मीलन करना या बन्द करना। यह भी शांकरी इच्छा का द्योतक है। स्पन्ददर्शन में इसको भी अनेक अर्थों में ग्रहण किया जाता है। जगत् का प्रलय होना इसका मूल अर्थ है। यह शिवेच्छा से ही होता है। यह प्रलय एवं निमीलन अर्थ में ग्रहण किया जाता है। यह प्रमेयभाव को प्रमातृभाव के अन्दर विलीन कर देने वाली स्पन्द की अन्तर्मुखी गति का वाचक है। यह सदाशिव दशा में होता है।

25. उन्मीलन समाधि : समाधि में लीन होकर साधक के द्वारा जब स्वात्मा का शिव से संयोग होता है, उसे उन्मीलन समाधि के नाम से जाना जाता है। यह साधक को आनन्द प्रदान कराने वाली अवस्था होती है। साधक प्रकाशमय हो जाता है और उसको जगत् का आभास नहीं रहता है। वह सतत अभयास से शिवतत्व में लीन रहता है। सभी बाह्य विषयों के स्वयं का विच्छेद करके साधक शिवदर्शन का प्रयास करता है। यही उन्मीलन समाधि की अवस्था कहलाती है। नेत्रतन्त्र में भी कहा गया है–"स्वपरस्थेषु भूतेषु जगत्यस्मिन्समानधीः। शिवोऽहमाद्वितीयोऽहं स समाधिः परः स्मृतः"।।[78]

उन्मीलन समाधि की अवस्था

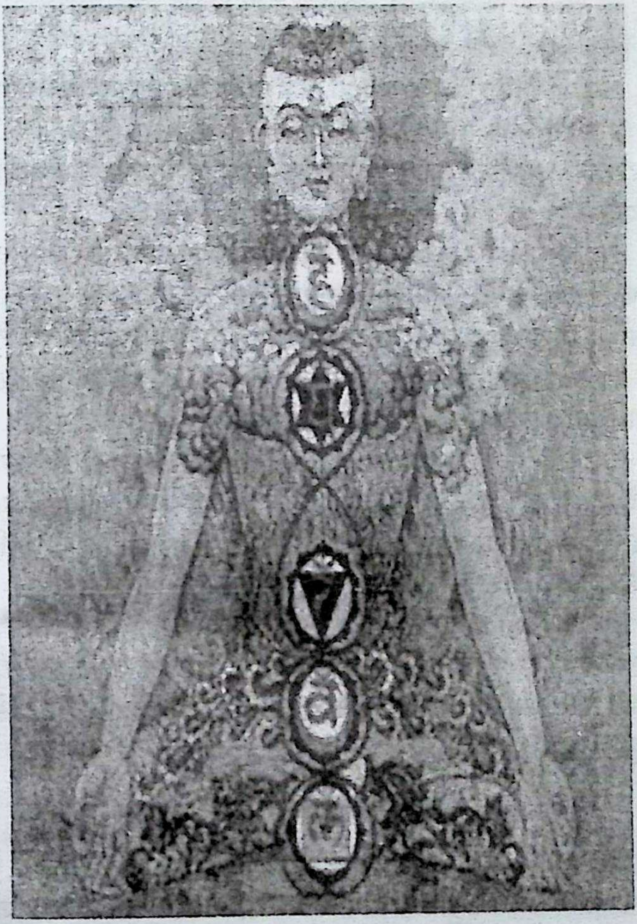

26. क. चित् : शुद्ध देश काल आकार से विचित्र शून्य संवित् ही चित् है। यह परम शिव की पूर्णतः शुद्ध शक्ति मानी जाती है। यह अपरिमित शुद्ध परिपूर्ण और स्वतन्त्र संवित् जो परमशिव के रूप में चमकती रहती है। यह क्षेत्रज्ञ प्रमातृ रूप संवित् देवस्वरूपा होती है।

ख. चित्त : यह विश्व की सिद्धि का हेतु है। यथा "चित्तिः स्वतन्त्र विश्वसिद्धिहेतुः" ।[79]

ग. चेतन : चेतयते इति चेतनः। तस्य भावः चौतन्यम्। जिसका भाव

सर्वकर्तृत्व और सर्वज्ञातृत्व तथा स्वान्त्र्य से युक्त हो, उसे चेतन कहते है।[80]

घ. चेत्य : चेतन पद से अवतरित तथा विषयों द्वारा संङ्कुचित चिति ही चित्त है। भगवती चिति ही चित्त संज्ञा को प्राप्त होती

27. जीवमुक्ति : जीव के द्वारा स्वशरीर में रहते हुए मुक्ति के आस्वाद की दशा ही जीवन मुक्ति कहलाती है। यह शिव के शक्तिपात से होती है। साधकों द्वारा इसका अनुभव किया जाता है। साधना मार्ग की सर्वोत्कृष्ट अवस्था जीवनमुक्ति अवस्था है।

28. परमशिव : काश्मीर शैवदर्शन की तत्त्वमीमांसा में छत्तीस तत्त्वों का परिगणन किया गया है। इनमें पृथ्वी तत्त्व से शिव पर्यन्त की गणना की जाती है। सैंतीसवाँ तत्त्व परमशिव कहलाता है। आचार्य अभिनवगुप्त के मत में यह समस्त सृष्टि का मूल कारण है। सभी तत्त्वों का इसमें लय और उदय होता रहता है। समस्त संसार इसकी अभिव्यक्तिमात्र है। इसकी इच्छा का परिणाम है।

यह काल, स्थान और कारणता से परे है।[81] यह बन्धनों से मुक्त स्वतन्त्र सत्ता है।[82] यह सदा शक्ति से संयुक्त रहता है। शक्ति से भिन्न नहीं होता है। इसका स्वरूप असीम होता है। काश्मीर शैवदर्शन में इसको अनेक नामों से वर्णित किया गया है। जैसे– श्रीकण्ठ, महाभैरव, अमरेश्वर, त्रिमूर्ति, संवित् इत्यादि।

29. प्रकृति : यह तत्त्व तेरह करण तत्त्वों और दश प्रमेय तत्वों का सामान्य मूल स्वरूप है। इसमें त्रिविध गुण होते हैं। यह तीनों गुणों के साम्य की अवस्था होती है। माया प्रमाता का जो सामान्य आचार इदं रूप का अवभासित प्रमेय तत्त्व ही प्रकृति कहलाता है।

प्रकृति के तत्त्वों का विवेचन

प्रकृति के तत्त्वों में त्रिविध अन्तरूकरण का समावेश है तथा यह त्रिविध गुणों की साम्यावस्था होती है। प्रकृति के सभी तत्त्वों का विवेचन यहाँ किया गया है।

1. महत् बुद्धि तत्त्व	2. अंहकार	3. मन
4. श्रोत्र	5. त्वचा	6. चक्षु
7. रसना	8. घ्राण	9. वाक्
10. पाणि	11. पाद	12. पायु
13. उपस्थ	14. शब्द	15. स्पर्श
16. रूप	17. रस	18. गन्ध
19. आकाश	20. वायु	21. तेज
22. जल	23. पृथ्वी।।	

30. परावाक् : काश्मीर शैवदर्शन में परावाक् को अनुत्तरा कहा जाता है। अनुत्तर तत्त्व की शक्ति अनुत्तरा कहलाती है। यह अनुत्तर तत्त्व ज्ञान और क्रिया का समावेत रूप है।[83] दूसरे शब्दों में यह प्रकाश विमर्श का सामरस्य है। अनुत्तरा परावाक् स्थूल होते हुए भी पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणी का रूप धारण करती है। इसका बोध अ वर्ण से होता है। यह अनुत्तर शिव की शक्ति कौलिकी शक्ति कहलाती है। यह कौलिकी शक्ति ही अनुत्तरा है। इसका दूसरा नाम विसर्ग शक्ति है।[84] इसको स्वातन्त्र्य शक्ति का विशिष्ट पर्याय माना जाता है।

परावाक् का स्वरूप

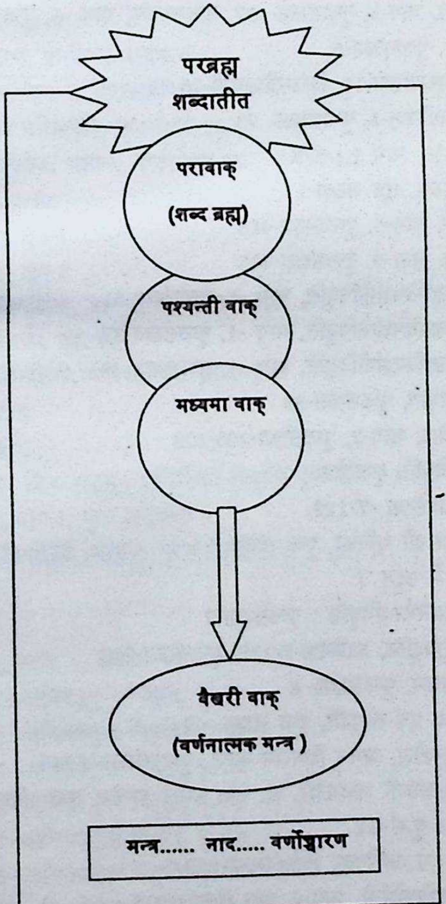

।। इति शिवम् ।।

संदर्भ ग्रंथ :

1. काश्मीर शैवदर्शन, वी.एन.पण्डित, पृष्ठसंख्या-63
2. वस्तुतस्तु सत्तापि प्रकाशविश्रान्तैव। ई.प्र.वि.वि.भाग-1, पृष्ठसंख्या-65
3. स्फुरद्रूपता हि सता। स्फुद्रूपता च प्रकाशमानता हि प्रकाशाभेदः। सर्वप्रतिष्ठारूपः परमार्थः। शिवदृष्टि. वि. पृष्टसंख्या-148
4. ई.प्र.वि. भाग-1, पृष्ठसंख्या-127
5. पूर्णता प्रत्यभिज्ञा, कारिका, 36
6. विज्ञानभैरवविवृति, पृष्ठसंख्या- 122
7. स एव विमर्शत्वेन नित्येन महेश्वरः ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, भाग-1, 1/8/11
8. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-1/5/11
9. शब्दकल्पद्रुम, भाग-5, पृष्ठसंख्या-457, वाचस्पत्यम्, भाग -5, पृष्ठसंख्या- 366
10. स्पन्दसन्दोह, पृष्ठसंख्या-5
11. शिवदृष्टि, पृष्ठसंख्या-10, शिवस्तोत्रावली-13/15
12. तन्त्रसार, आह्निक्-1, पृष्ठसंख्या- 73
13. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, भाग 1,1/5/3
14. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्र संख्या-1
15. शब्दकल्पद्रुम, भाग-5, पृष्ठसंख्या-468
16. शब्दकल्पद्रुम, भाग-5, पृष्ठसंख्या-468
17. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शनीविवृति, भाग -1, पृष्ठसंख्या-51
18. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शनीविवृति, भाग -1, पृष्ठसंख्या-37
19. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शनीविवृति, भाग -1, पृष्ठसंख्या-48
20. स्पन्दकारिकावृति, पृष्ठसंख्या-33
21. तन्त्रलोकविवेक, भाग-2, पृष्ठसंख्या-108-109
22. विज्ञानभैरवविवृति, पृष्ठसंख्या- 7
23. शिवदृष्टि, आह्निक -7/122
24. रूद्रयामलतन्त्र की भूमिका, पृष्ठ संख्या - 5
25. कामिकागम में उदृत ।
26. क्षेमराज, विज्ञानभैरवविवृत्ति : पृष्ठसंख्या-7
27. सोमानन्द, शिवदृष्टि, आह्निक-7/122, पृष्ठसंख्या-298
28. काश्मीर शैविजम, पृष्ठसंख्या- 8
29. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, पृष्ठ संख्या - 2
30. संस्कृत-हिन्दी-कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृष्ट संख्या- 523
31. संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश, डॉ. उमा प्रसाद पाण्डेय, पृष्ठ संख्या - 475
32. ई.प्र.वि.1/1/1 पृ.सं.-12
33. तन्त्रालोक, प्रथम आह्निक, श्लोकसंख्या-220
34. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-2, पृष्ठ संख्या- 208
35 पूर्वलिखित

36 ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी-भाग-2, पृष्ठ संख्या- 209
37 मालिनीविजयोत्तरतन्त्र-1/29
38 तन्त्रसार में वर्णित।
39 तन्त्रालोक टीका भाग-6, पृष्ठ संख्या-50
40 तन्त्रालोक, आ.- 1/88
41 ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-1, पृष्ठ-31
42 स्पन्दनिर्णय, पृष्ठ संख्या-3
43 बोधपंचदशिका, श्लोक-2
44 तन्त्रालोक, भाग-1, पृष्ठसंख्या-42
45 तन्त्रालोक में वर्णित ।
46 परात्रिंशिकाविवरण, प्रारम्भिक श्लोक-3
47 तन्त्रालोकविवेक, भाग-1, पृष्टसंख्या-35
48 (क) महार्थमंजरी परिमावृति, पृष्ठसंख्या-96,
(ख) तन्त्रालोकविवेक, भाग-1, पृष्ठसंख्या-35
49 तन्त्रालोक, आ.-1/88
50 प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्र-1
51 प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्र-2
52 ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-2, पृष्ठ संख्या-190
53 अनुत्तरप्रकाशपंचिका, का.-1
54 ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-2, पृष्ठ संख्या-116
55 शिवदृष्टि -3/2/3
56 शिवदृष्टिः-3/3
57 अनुत्तराख्यं ज्ञानं क्रियात्मकम्। प्रात्रिंशिका विवृति, पृष्ठ संख्या-2
58 नेत्रतन्त्र टीका, भाग-1, पृष्ठ संख्या-9
59 ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग-2, पृष्ठ संख्या-111
60 पूर्वोक्त।
61 पूर्वोक्त।
62 स्वच्छन्दतन्त्रम्, पटल, 1, श्लोक - 3
63 श्रीपरात्रिंशिका—अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-31
64 श्रीपरात्रिंशिका—अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-32
65 श्रीपरात्रिंशिका—अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-32
66 श्रीपरात्रिंशिका—अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-33
67 श्रीपरात्रिंशिका—अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-34
68 श्रीपरात्रिंशिका—अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-34
69 श्रीपरात्रिंशिका—अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-34
70 श्रीपरात्रिंशिका—अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-37
71 श्रीपरात्रिंशिका—अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-38

72 श्रीपरात्रिंशिका–अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-38
73 श्रीपरात्रिंशिका–अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-39
74 श्रीपरात्रिंशिका–अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-41
75 श्रीपरात्रिंशिका–अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-42
76 श्रीपरात्रिंशिका–अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-43
77 श्रीपरात्रिंशिका–अभिनवगुप्त विवृति, पृ.-49
78. नेत्रतन्त्र, अधिकार-9, श्लोक- 18
79. प्र. हृ. सूत्र -1
80. शि. सू., वृ. पृ., 1
81. त्रिपुररहस्यक, पृ. 7-8
82. तन्त्रालोक, आह्निक-1, श्लोक-49
83. अनुत्तराख्यं ज्ञानं क्रियात्मकं परात्रिंशिका विवित्ति, पृ. 2
84. अनुत्तरं परं धाम तदेवाकुलमुच्यते। विसर्गस्तस्य नाथस्य कौलिकी शक्तिरुच्यते।। त.लो., आ. -3, श्लोक- 143

उपसंहार

भारतीय ज्ञानपरम्परा की अन्यतम ज्ञानविधा काश्मीर शैवदर्शन संसार के यथार्थ का सरलता से चित्रण करता है। इसमें वर्णित सिद्धान्त, साधना पद्धति एवं आध्यात्मिक परक विषयों का अध्ययन मानव के जीवन को सुषुप्ति अवस्था से हटाकर जागृति प्रदान करता है। इस परम्परा को अध्यधिक परिपुष्ट बनाने के लिये आचार्य सोमानन्द, उत्पलदेव एवं अभिनवगुप्त का विशेष योगदान है। इन त्रिक आचार्यों की साधना एवं तपस्या का परिणाम ही इसका साहित्य है। आचार्य अभिनगुप्त द्वारा विरचित लगभग पचास ग्रन्थ इसके विपुल साहित्य का प्रमुख अंश है। इस विपुल साहित्य को उत्कृष्ट साधना के द्वारा ही आत्मसात् किया जा सकता है। काश्मीर शैवदर्शन में वर्णित सिद्धान्त मानव जीवन की समस्याओं का सरलता से समाधान करते हैं। मानव स्वयं के वास्तविक स्वरूप को आत्मसात् करके परमतत्त्व का अनुसंधान द्वारा अनुभव करते हैं। संसार के विविध गतिविधियों का आभास शिव का प्रपञ्च मात्र है। यह विश्व परम शिव की स्वेच्छा का परिणाम है। काश्मीर शैवदर्शन में शिव शक्ति में अभेद हैं। काश्मीर शैवदर्शन में शिव ही एकमात्र परमतत्त्व है। इससे भिन्न जो भी कुछ इस संसार में देखने को मिलता है वह उसकी अभिव्यक्ति मात्र है। वह परमशिव काल, स्थान और कारणता की सीमाओं से परे है।[1] शिव आत्मरूप होते हुए भी परमसत्ता है। वह निरपेक्ष और सभी बन्धनों से स्वतन्त्र सत्ता है।[2] वह शिव चेतना का अवभासात्मक प्रकाश है। चेतना जहाँ भी रहती है। वहाँ वह प्रकाशित होती रहती है। प्रकाश का स्वभाव ही विमर्श है। सोमानन्द ने शिवदृष्टि में स्पष्ट कहा है– शिव ही आत्मरूप है। यह सम्पूर्ण सृष्टि शिव का विलास है। उससे पृथक् कोई स्वतन्त्र वस्तु नही है और ऐसी किसी स्वायत्त सृष्टि की कल्पना भी नही की जा सकती है।[3] तन्त्रलोक में भी कहा गया है–परमशिव ही जगत् का परमकारण है।[4] विश्व की सृष्टि और प्रलय बन्धन और मोक्ष की कल्पना उसका स्वातन्त्र्य स्वभाव है।[5] उसके इस स्वभावरूप स्वातन्त्र्य शक्ति की संज्ञा स्पन्द है।[6] इसी स्वभाव के कारण वह पञ्चविधकृत्यों में निरन्तर संलग्न रहता है।

इस विषय में अनुत्तरप्रकाशपंचाशिका एवं बोधपंचदशिका में विस्तृत वर्णन मिल्ता है।[7] यह शिव स्वभावतः पंचकृत्यकारी है। वह स्वातन्त्र्यशक्ति के कारण पञ्चकृत्यरुपी महालीला धारण करता है। जिनका वर्णन प्रथम स्वरूप सृष्टि का है। इसमें परमशिव अपने भीतर से सब कुछ बाहर अभिव्यक्त कर देता है। सृष्टि शिव का वैभव है। अपनी ही भित्ति पर वह जगत् का उपादान और निमित्त कारण दोनो हैं। केवल उसकी शक्ति ही जगत् रूप में आभासित होती है। द्वितीय स्वरूप में स्थिति होती है। इसमें सृष्टि के अनन्तर जगत् का ठहराव और नियमपूर्वक उसका पालन होता है। तृतीय अवस्था में संहार होता है। जिसका सर्जन या अभिव्यक्त किया था, उसे पुनः समेट लेना ही संसार की प्रक्रिया है। चतुर्थ अवस्था में तिरोधान होता है। जिसके माध्यम से परमशिव अपने वास्तविक स्वरूप का विलय, विधान, तिरोधान, निग्रह, आवरण या गोपन कर लेता है। पुनः जगत् के रूप में आभासित होता है। इसी क्रम में अन्तिम अवस्था में शिव के द्वारा अनुग्रह किया जाता है। जिसमें परमशिव अपने स्वरूप का प्रकाश शक्ति के माध्यम से करता है।

काश्मीर शैवदर्शन के परिशील के अन्त में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि– इसके सामान्य परिशीलन से इस दर्शन का सम्पूर्ण ज्ञान तो नही हो सकता है लेकिन उसकी सामान्य रूपरेखा द्वारा उसकी उपयोगिता को समझा जा सकता है। इसको आध्यात्मिक दर्शन के नाम से जाना जाता है। इसके विषयों समझना आसान कार्य नही है। तथापि शिव के शक्तिपात् से इतना कुछ समझ पाया वह प्रस्तुत पुस्तक में संकलित है। शिव के द्वारा प्रोक्त शास्त्र के अध्ययन हेतु गुरु का होना अनिवार्य है। इसके विषयों का मानव के जीवन में अकसर सम्बन्ध परिलक्षित होता है। वस्तुतः शिव ही इस सृष्टि का मूल कारण है। इसे परमकारण कहा गया है–**"शिव परमकारणम्"**। इसे अनुत्तर तत्त्व भी कहा जाता है। यह सदैव दो भाव विश्वमय और विश्वोतीर्ण में रहता है। इस चित् की शक्ति चित्ति है– **"चितिः स्वतन्त्रता विश्वसिद्धिहेतुः"**। यह अपनी स्वेच्छा से विश्व का निर्माण करता है– **"स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति"**। इसको जानने हेतु काश्मीर शैवदर्शन के आगम ग्रन्थों का अध्ययन अनिवार्य है। जैसे– शिवसूत्रम्, परात्रिंशिका, स्वच्छन्दतन्त्रम् आदि। इसके अतिरिक्त इसके मूलभूत ग्रन्थ भी इसके ज्ञानार्जन हेतु सहायक है।

इनमें तन्त्रसार, तन्त्रालोक, शिवदृष्टि, प्रत्यभिज्ञाहृदयम् आदि की गणना की जाती है। इनमें रहस्यात्मक विद्या का वर्णन किया गया है। इस रहस्य का ज्ञान

केवल अनुभव के द्वारा ही किया जा सकता है। "श्वेताश्वतरोपनिषद्" में स्पष्ट कहा गया है–

"एको हि रूद्रो न द्वितीयास्थुर्य इमांल्लोकानीशतीईश्नीभिः।
प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठ सञ्चुंकोपान्तकाले संसृज्य विश्वा भुननानि गोपाः"।।

यदि वर्तमान परिपेक्ष्य का अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि काश्मीर शैवदर्शन के आचार्यों एवं विद्वानों को अंगुलियों पर गिना जा सकता है। इस दर्शन की आचार्य परम्परा एवं साहित्य इतना विशाल है कि उस पर अभी तक भी कार्य नही हो पाया है। एक तरफ सांख्य-योग, वेदान्त, बौद्धदर्शन और जैनदर्शन पर जब दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं उनका क्षेत्र दिन-प्रतिदिन दीर्घ होता चला जा रहा है। योगदर्शन की योग पद्धति का हर जगह बोलबला है। जबकि वर्तमान काश्मीर शैवदर्शन के छात्रों को आध्यात्मिक साधना को समझाने हेतु शैवाचार्यों का अभाव है। वर्तमान समाज में मानव मूल्यों की कमी को सर्वत्र देखा जा सकता है। काश्मीर शैवदर्शन में योग, धर्म, ज्ञान, आचार-विचार एवं आध्यात्म सम्बन्धी अनेकों विषयों का वर्णन मिलता है। जो समाज के लिए उपयोगी है। अतः इसका अध्यान करना चाहिए। इसकी विशेषाताओं का वर्णन इस प्रकार है।

1. यह आध्यात्मिक दर्शन है। इसके अध्ययन से न केवल ज्ञान अपितु अध्यात्म के प्रति आस्था अधिक बढ जाती है।
2. यह सौन्दर्यमूलक दर्शन है। इसमें स्पन्द, प्रकाश और विमर्श आदि रहस्यपरक विषयों का वर्णन किया गया है।
3. यह अद्वैतवाद की स्थापना करता है। प्रत्येक प्राणी मात्र के प्रति अद्वैतभाव रखने की प्रेरणा प्रदान करता है।
4. यह संसार मिथ्या न होकर यथार्थ है। जगत् परम शिव का आभास है।
5. इसकी तत्त्वमीमांसा सर्वाधिक प्रबल एवं रहस्यात्मक मानी जाती है। इसमें शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, सद्विद्या और माया का आध्यात्मिक परक वर्णन किया गया है।
6. इसकी सृष्टिप्रक्रिया में परमतत्त्व से पृथ्वी पर्यन्त केवल शिव का विलास है।
7. सांसरिक जीव के सप्तविध प्रमातृभाव को स्पष्ट करके उस जीव के लिए प्रत्यभिज्ञा की उपलब्धि का मार्ग प्रशस्त किया है।
8. मलावृत पञ्चकञ्चूकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।
9. मन्त्रमात्रिका सिद्धान्त द्वारा सभी वर्णो की अहम् भूमिका को स्पष्ट किया गया

गया है।

10. शिव के शक्तिपात् वा अनुग्रह का साधनायुक्त विवेचन किया गया है।
11. मनुष्य जाति परम्परा में किसी भी वर्ण, लिंग, जाति या सम्प्रदाय के अलगाव का वर्णन कुत्रापि दृष्टिगोचर नही होता है।
12. काश्मीरी शैवसाधकों की जटिल साधना भक्ति का विस्तार से वर्णन किया गया है।
13. भारतीय ज्ञानपरम्परा के अन्य शास्त्रों का पूर्णतरू सम्मान किया गया है।
14. समाज को नूतन संदेश प्रदान करने हेतु भक्ति साधना और गुरु परम्परा का विस्तार से वर्णन किया गया है।
15. संसारी भोक्ताओं को भोगविलास की बजाय आध्यात्मिक पथ पर अग्रसित करने पर बल प्रदान किया गया है।

काश्मीर शैवदर्शन की आचार्य परम्परा और इसका विपुल साहित्य इस बात को स्वयं प्रमाणित करता है कि यह ज्ञानपरम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इसके संरक्षण के लिये शिक्षा जगत् आज भी मूक बना हुआ है। जिस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में कम्प्यूटर एवं प्रौद्योगिकी का विकास अनिवार्य है उसी प्रकार काश्मीर शैवदर्शन की ज्ञानपरम्परा का संरक्षण करना भी अनिवार्य है। इसके अस्तित्त्व को बचाने के लिये सरकारा ने अभी तक कोई महत्त्वपूर्ण कदम नही उठया है। काश्मीर प्रदेश में होने वाली आतंकी गतिविधियों से इसका अस्तित्त्व दिन-प्रतिदिन समाप्त हो रहा है। सभी काश्मीरी पान्डुलिपियों का लगभग ह्रास हो चूका है। इस दार्शनिक विद्या के विषय में अध्यापन का भी पूर्णतः अभाव है। नाममात्र विद्वान् ही इस ज्ञानपरम्परा पर अधिकार रखते हैं।

आधुनिक परिपेक्ष्य के दृष्टिपटल पर यदि नजर ड़ालते हैं तो केवल स्वामी लक्ष्मण जू जी महाराज द्वारा संचालित ईश्चर आश्रम ट्रस्ट, निसात नगर, श्रीनगर-कश्मीर इसके अस्तित्त्व को संरक्षित करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। इससे संयुक्त तीन अन्य शिक्षण केन्द्र भी इस ज्ञानपरम्परा को संवर्धित कर रहे है। जिनमें 1. ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, सरिता विहार, नई दिल्ली 2. ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, महेन्द्र नगर, जम्मू 3. ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, बम्बई। इसके अतिरिक्त कतिपय विश्वविद्यालयों के संस्कृत विभागों मे ही का शैवदर्शन पर पठनपाठन एवं शोधकार्य करवाया जाता है। दूसरी तरफ हर्ष की बात यह है कि विदेशी विश्वविद्यालयों में भी इस ज्ञानपरम्परा पर शोधकार्य चल रहा है। जर्मनी के हम्बर्ग विश्वविद्यालय, हाईड़लबर्ग विश्वविद्यालय एवं नीदरलैण्ड़ के लिण्डेन

विश्वविद्यालय में काश्मीर शैवदर्शन पर शोधकार्य करववाया जाता है। रोम के कई शोध शिक्षण संस्थानों में भी इस पर अध्ययन एवं शोधकार्य हो रहा है।

काश्मीर शैवदर्शन का अध्ययन मानव को शिव के प्रति आस्थावान बना देता है। यद्यिप इसके सिद्धान्तों को समझना आसान कार्य नही है। उनका गुरुमुख से ही अध्ययन किया जा सकता है। आचार्य अभिनवगुप्त के मत में इस शास्त्र का पूर्णज्ञान तभी प्राप्त हो सकता है, जब इसके सिद्धन्तों को गुरु के उपदेश से, शास्त्र पुरातन सिद्धों के शास्त्रो से, स्वतः मेहनत करने से या अपनी अनुभूति से ही जाना जा सकता है "एवं गुरुतः शास्त्रतः स्वतः एतद् दृढीकृतं भवति" (ई.प्र. वी.-1/4/16)

अतः शिवकृपा से इस लघुग्रन्थ का लेखन किया गया है। इसके अन्तर्गत हुई त्रुटियाँ मुझे स्वीकार्य हैं, एवं अन्य सभी ज्ञानपरक विषयवस्तु शोधार्थियों एवं काश्मीर शैवदर्शन के प्रेमियों के लिए शिव का प्रसाद है।

।। इति शिवम्।।

संदर्भ ग्रंथ :

1. त्रि. र., पृ. 7-8
2. त. लो., 1/59
3. शि. दृ., 1/1, अस्मद्रुपसमाविष्टः स्वात्मनात्मनिवारणे। शिवः करोतु निजया नमः शक्तया तदात्मने।।
4. त. लो., 1/88, शिवः परमकारणम्र्।
5. ई. प्र. वि. भा., 1, पृ. 31
6. स्प. नि., पृ., 3
7. बो. प. द , श्लो., 2, एष देवोऽनया देव्या नित्यं क्रीडारसोत्सुकः। विचित्रान्सृष्टिसंहारान्विधते युगपद्विभुः।।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेदसंहिता : वेदविद्या प्रतिष्ठान, नई दिल्ली-1998
2. ऋग्वेदसंहिता : (सायणभाष्य), वैदिक संशोधन मण्डल, पूना।
3. यजुर्वेदसंहिता : सातवलेकर, पारडी-1946
4. यजुर्वेदसंहिता : उवट-महीधरभाष्य सहित, मोतिलाल बनारसीदास, वाराणसी-1978
5. अथर्ववेद संहिता : सायण भाष्य : (हिन्दी अनुवाद), श्री रामचन्द्र शर्मा, सनातन धर्म यन्त्रालय, मुरादाबाद संवत्-1981
6. ऋग्वेदसंहिता : (स्कन्दस्वामी उद्‌गीथ, वेंकटमाधव तथा मुद्‌गल), भाष्य सहित, विश्वेशवरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर ।
7. ऋग्वेद भाष्यभूमिका : (सायणाचार्य), बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा संस्कृत वाराणसी-1946
8. अथर्ववेदसंहिता : (सायण भाष्य), श्री विश्वबन्धु शास्त्री, विश्वेवरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, पंजाब।
9. अथर्ववेदसंहिता : (संस्कृत हिन्दी व्याख्या), श्री क्षेमकरण दास त्रिवेदी,अथर्ववेद भाष्य कार्यालय, 34 लूकरगंज, इलाहबाद ,1911-1921।
10. अथर्वेदसंहिता : (हिन्दी व्याख्या), प. जयदेव शर्मा, आर्य साहित्य मण्डल, लिमिटेड, अजमेर संवत्- 2014।
11. अथर्वेदसंहिता : (हिन्दी व्याख्या) प. श्रीकण्ठ शास्त्री, माधव प्रकाशन, कमला नगर, दिल्ली संवत्-2031।
12. अथर्वेदसंहिता : (हिन्दी व्याख्या) प. विश्वनाथ विद्यालंकार, हरियाणा, 1975-1992।
13. श्वेताश्व्तरोपनिषद् : गोरखपुर संस्करण.,२.२८ सप्तम् संस्करण

14. ईशादि नौ उपनिषद् : शंकराचार्य भाष्यार्थ सहित, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण-२. ६६
15. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी : अभिनवगुप्त, (भास्करी सहित), के.ए.एस.अय्यर एवं के.सी.पाण्डे (संपादक), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, १६८६
16. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका : उत्पलदेव, सं. मधुशुदन कौल शास्त्री, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, १६२१
17. तन्त्रालोक : अभिनवगुप्त, भाग-१-२, राजानक जयरथ कृत विवेक व्याख्या सहित, परमहंस मिश्र (हिन्दी भाष्य एवं सम्पादक), वाराणसी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, १६२२-६३
18. तन्त्रसार : अभिनवगुप्त, राजानक जयरथ(व्याख्याकार) सं. मधुशुदन कौल शास्त्री, श्री नगर, काश्मीर सीरिज आफ टेक्स्ट्स एण्ड स्टडीज, १६१८
19. तन्त्रसार : अभिनवगुप्त, परमहंस मिश्र(अनुवादक एवं संपादक) वाराणसी, शक्ति प्रकाशन, १६८५
20. परमार्थसार : डॉ. कमला द्विवेदी, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-१६८४
21. परमार्थसार : योगराज कृत विवृति के साथ, स) जे.सी.चटर्जी, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्री नगर, १६१६
22. स्पन्दकारिका : डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी, आनन्द, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
23. शिवदृष्टि : सोमानन्द, सं. मधुशुदन कौल शास्त्री, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, १६३४
24. शिवदृष्टि : सोमानन्द, राधेश्याम चतुर्वेदी (हिन्दी व्याख्याकार) वाराणसी संस्कृत संस्थान, १६८६
25. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् : क्षेमराज, शिवशंकर अवस्थी, शास्त्री, (व्याख्याकार एवं सम्पादक), वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, १६७.
26. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् : क्षेमराज, जयदेव सिंह (संपादक) दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६६३
27. रुद्रयामलतन्त्र : हिन्दी टीका सहित, टीकाकार- डॉ. सुधाकर मालवीय, दो भाग, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

28. काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र : (शिवसूत्र, स्पन्दसूत्र एवं शक्तिसूत्र समन्वित) डॉ. श्यामकान्त द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

29. विज्ञानभैरव : श्रीक्षेमराजाचार्य विरचित विवृतिभागोत्तरं श्री शिविपाध्याय विरचित, श्रीबापूपाल आँजना विरचित कारिकानुवाद सहित, हिन्दी व्याख्या सहित, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

30. त्रिकदर्शनम् : आचार्य बद्रीनाथ शुक्ल स्मृति ग्रन्थमाला, प्रो. रामचन्द्र द्विवेदी, (साधना एवं ज्ञानपक्ष पर आधारित), सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा ग्रन्थालाओं में प्रकाशित ग्रन्थ।

31. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति : कपिलदेव द्विवेदी, विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण-2008

32. वैदिकदर्शन : डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर भदोही, उ. प्रदेश

33. उत्पलदेव की सिद्धित्रयी की समीक्षा : डॉ. सुलोचना मिश्र, अभव्यक्ति प्रकाशन, नई दिल्ली

34. काश्मीर शैव दर्शन और कामायनी, डॉ. भँवर लाल जोशी, वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफिस, १९६८

35. काश्मीर शिवाद्वयवाद की मूल अवधारणाएँ : नवजीवन रस्तोगी, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

36. वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत : लेखक राम ण गोपाल भण्डारकर, (अनुवादक) महेश्वरी प्रसाद, भारतीय विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण-अगस्त-१९७७

37. सर्वदर्शनसंग्रह : माध्वाचार्य, सं.-उमाशङ्कर शर्मा "ऋषि", चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण-

38. A Historical Philosophical study : Pandey, K.C. Chaukhamba Sanskrit Series, Varanasi-1963

39. A Handbook of Veer Saivism : nandimath S.C. Motilal Banirsidas-1979.

40. Kashmir Saivism : Chatterji-J.C.Vol-1, Kashmir Granthavali, 1914

कोशगन्था :– (Dictionaries) :– संस्कृत/हिन्दी

1. अमरकोश : अमर सिंह, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९६१
2. संस्कृत हिन्दीकोश : वामन शिवराम आप्टे, राधा पब्लिकेशन्स, 2008 पुनर्मुद्रण
3. परिजात कोश : संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, डॉ. ईश्वरचन्द्र शर्मा, परिमल पब्लिकेसन्स, शक्ति नगर, नई दिल्ली
4. भारतीय दर्शन बृहत्कोश : बच्चू लाल अवस्थी, शारदा पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली २..४
5. भारतीय दर्शन परिभाषा कोश : डॉ. दीनानाथ शुक्ल, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली।
6. काश्मीर शैवदर्शनबृहत्कोश : डॉ. बलजिन्नाथपण्डित (निदेशक), डॉ. गुव्वलगङ्गन्ना (प्रधानसम्पादक), प्रकाशन राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्, मानित विश्वविद्यालय, श्रीरणवीरपरिसर, पो. कोट, जम्बु, प्रथम संस्करण-2005।

।। इति शिवम्।।

प्रदीप

शिक्षा : विशारद, ज्योतिष प्राज्ञ, शास्त्री, शिक्षाशास्त्री (श्री.ला.ब.शा.रा.सं. विद्यापीठ नई दिल्ली), एम.ए., एम.फिल. (संस्कृत विभाग जे.एन.यू. नई दिल्ली), यू.जी.सी. नेट परीक्षा उत्तीर्ण।

पुरस्कार एवं सम्मान : शास्त्री टॉपर अवार्ड एवं बेस्ट कल्चरल अवार्ड (श्री.ला.ब.शा.रा.सं. विद्यापीठ, नई दिल्ली), यू.जी.सी. जे.आर.एफ. अवार्ड, वेश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली, दिल्ली संस्कृत अकादमी से लगातार चार बार सम्मानित।

शोधपत्र : राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनारों में शोधपत्रों का वाचन एवं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय शोध-पत्रिकाओं में आलेख प्रकाशित।

विदेश यात्रा : *"International Conference on Religious Studies (ICRS 2013)*, Colombo, *Sri Lanka* में काश्मीर शैवदर्शन विषय पर शोधपत्र का वाचन किया।

अन्य उपलब्धियाँ : N.C.C. की ए. बी तथा सी सर्टिफिकेट तथा पाँच राष्ट्रीय स्तर के कैम्पों में सहभागिता, रिसर्च मैथडोलॉजी कोर्स, संस्कृत विभाग, जे.एन.यू, नई दिल्ली, राष्ट्रीय स्तर की चार कार्यशालाओं में भाग ग्रहण किया।

वर्तमान :- जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग से पी-एच.डी. (विषय : काश्मीर शैवदर्शन में नाद, बिन्दु और विसर्ग : सिद्धान्त, साधना एवं सृष्टिप्रक्रिया) शोधकार्य में अध्ययनरत।

पता : गाँव भालखी, दौंगड़ा : अहीर, जिला : महेन्द्रगढ़ (हरियाणा)।

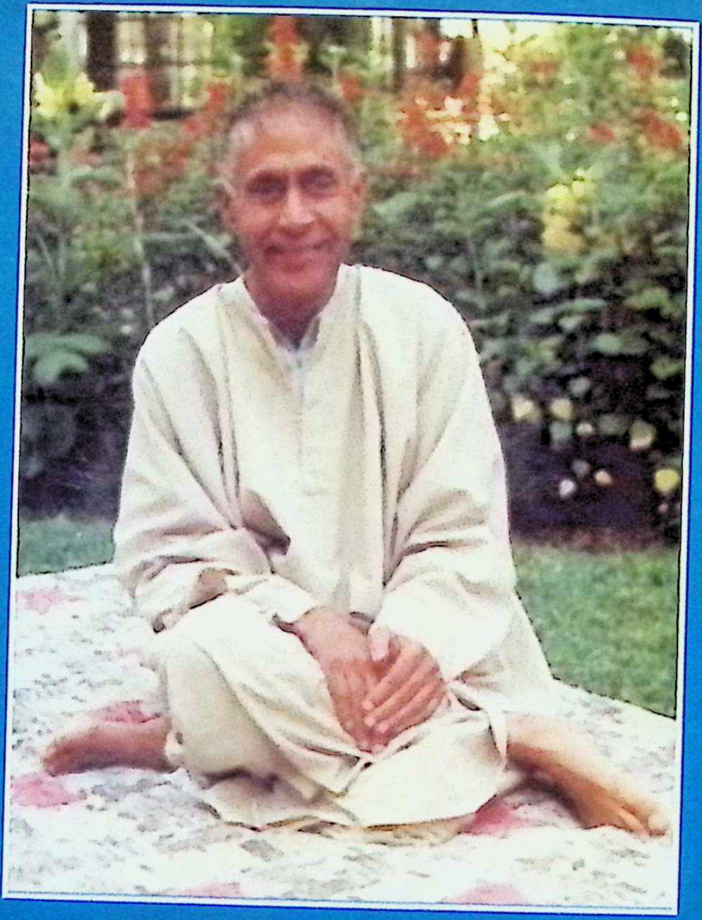

ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्षमण जू महाराज

(1907-1991)

RADHA PUBLICATIONS

4231/1, Ansari Road, Daryaganj
New Delhi-110002
Phones : 23247003, 23254306
website. radhapublications.com
Email : radhapublications@rediffmail.com

₹ 400/-

ISBN 81-7487-981-1

9788174879813